द्वितीय परिच्छेद

गोस्वामी जी. की भक्ति-भावना

सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि ।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धान्त बिचारि ।।

भक्ति भावना के अन्तर्गत निम्नाङ्कित तीन तत्वों पर विचार किया जाता है :—

१—भक्ति
२—भगवान्
३—भक्त

अब हम उपर्युक्त तीनों तत्वों के आधार पर गोस्वामी जी की भक्ति-भावना का अध्ययन करेंगे ।

क- भक्ति

भक्ति की परिभाषा।—भक्ति शब्द 'भज् सेवायाम्' धातु से क्तिन् प्रत्यय का योग करने पर निष्पन्न होता है ।[1] क्तिन् प्रत्यय भाव, अधिकरण और करण में प्रयुक्त होता है । क्तिन् प्रत्यय का भाव में प्रयोग करने पर भजन को भक्ति कहेंगे ।[2] प्रत्यय का अधिकरण में प्रयोग होने पर उन सभी दशाओं की संज्ञा भक्ति होगी, जिनमें सेवा की जाती है ।[3] क्तिन् प्रत्यय के करण में प्रयुक्त होने पर सेवा की साधक क्रियाओं को भक्ति कहेंगे ।[4] उपर्युक्त प्रत्यय के भाव अर्थ से सिद्ध 'भक्ति' शब्द साध्या या प्रेमा भक्ति का द्योतक है तथा अधिकरण और करण में प्रयुक्त क्तिन् प्रत्यय से निष्पन्न 'भक्ति' शब्द साधन भक्ति को लक्षित करता है ।

---

१. भक्तिः । अष्टाध्यायी ४।३।९५
भज्यते सेव्यते इति भक्तिः ।
२. भजनं भक्तिः ।
३. भज्यते अस्मिन्निति भक्तिः ।
४. भज्यते अनया इति भक्तिः ।

भक्ति-प्रतिपादक शास्त्रों और पुराणों में भक्ति की अनेक परिभाषाओं का उल्लेख किया गया है। श्री मद्भागवत पुराण में कहा गया है कि भगवान् के प्रति आसक्त पुरुषों की उनके प्रति प्रवृत्ति का नाम भक्ति है।[1] देवी भागवत के अनुसार पूज्य में अनुराग होना भक्ति है।[2] शांडिल्य तत्त्व सुधा में कहा गया है कि ईश्वर के प्रति सर्वाधिक स्नेह का नाम भक्ति है।[3] महर्षि शांडिल्य के मत से ईश्वर के प्रति उत्कृष्ट अनुराग का नाम भक्ति है।[4] भक्ति की दृढ़ता एवं निर्मलता का ज्ञान लौकिक प्रीति की भांति भगवत्कथा-श्रवण, नाम-कीर्तन आदि में रोमांच और अश्रुपात आदि चिह्नों से होता है।[5] नारद भक्ति सूत्र में कहा गया है कि व्यास के मत से पूजा आदि में अनुराग होना भक्ति है।[6] गर्ग ईश्वरीय कथा आदि में अनुराग होने को भक्ति कहते हैं।[7] नारद के मत से अपने सम्पूर्ण कर्मों को भगवान् के प्रति अर्पित कर देना और भगवान् का थोड़ा सा भी विस्मरण होने पर परम व्याकुल होना ही भक्ति है।[8] यह भक्ति परम-प्रेमरूपा और अमृत स्वरूपा है।[9] इस प्रेमाभक्ति को प्राप्त कर लेने पर मनुष्य न तो किसी वस्तु की आकांक्षा करता है, न शोक करता है और न द्वेष ही करता है। वह किसी वस्तु में न तो आसक्त ही होता है और न विषयभोगों की प्राप्ति में उसे उत्साह ही होता है।[10] व्रज-गोपियों में यही प्रेमरूपा भक्ति थी।[11] भक्ति मीमांसा नामक ग्रन्थ में ईश्वर के प्रति मन की उल्लास-वृत्ति को भक्ति कहा गया है।[12]

---

१. देवानां गुणलिंगानामानुश्रविक कर्मणाम् ।
सत्त्व एवैक मनसोवृत्तिः स्वाभाविकी तु या ।
अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ।। भागवत ३।२५।३२-३३
२. पूज्येष्वनुरागो भक्तिः । देवी भागवत ७।३१
३. सर्वस्मादधिकः स्नेहो भक्तिरित्युच्यते बुधैः । शांडिल्य तत्त्व सुधा
४. सा परानुरक्तिरीश्वरे । शांडिल्य भक्ति सूत्र २
५. तत्परिशुद्धिश्च गम्या लोकवल्लिङ्गेभ्यः । शां० भ० सू० ४३
६. पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः । नारद भक्ति सूत्र १६
७. कथादिष्विति गर्गः । ना० भ० सू० १७
८. नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति । नारद भक्ति सूत्र १९
९. सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा । अमृत स्वरूपा च । ना० भ० सू० २, ३
१०. यत्प्राप्य न किंचिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति ।
ना० भ० सू० ५
११. यथा व्रजगोपिकानाम् । ना० भ० सू० २१
१२. भक्तिर्मनस उल्लासविशेषः । भक्ति मीमांसा २।१।२

नारद पांचरात्र के अनुसार सर्वोपाधि विनिर्मुक्त होकर हृषीकेश की सेवा का नाम भक्ति है और अन्य के प्रति ममता का त्याग तथा भगवान् के प्रति प्रेमयुक्त ममता का होना भक्ति का लक्षण है।[१] श्री रूप गोस्वामी के मत से ज्ञान और कर्म से अनाच्छादित एवं अन्य समस्त कामनाओं से शून्य होकर सर्वभावानुकूलता पूर्वक भगवान् का अनुशीलन करना भक्ति है।[२] श्री मधुसूदन सरस्वती के मत से भगवद्गुण-श्रवणादि से द्रवीभूत चित्त की सर्वेश्वर भगवान् के विषय में अविच्छिन्न रूप से भगवदाकार वृत्ति को भक्ति कहते हैं।[३] रामानुजाचार्य ने स्नेह-पूर्वक सतत ध्यान को भक्ति माना है।[४] स्वामी रामानन्द के मत से अनन्य भाव से तत्परता पूर्वक छलकपट से रहित होकर परमात्मा की सेवा करना भक्ति है।[५] स्वामी विवेकानन्द के अनुसार निष्कपट होकर ईश्वर की खोज करना भक्ति है।[६] शंकराचार्य के मत से अपने स्वरूप का अनुसन्धान करना भक्ति है।[७] महाप्रभु वल्लभाचार्य[८] का मत है कि भगवान् के प्रति माहात्म्य ज्ञान युक्त सुदृढ़ और सर्वाधिक स्नेह होना ही भक्ति है। मुक्ति इस भक्ति से ही प्राप्त होती है, अन्य किसी साधन से नहीं। योगिराज जयतीर्थ मुनीन्द्र के मत से भगवान् के अपरिमित, अनवद्य और कल्याणकारी गुणों के ज्ञान से समुत्पन्न, उनके

---

१. सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते।
अनन्य ममता विष्णौ ममता प्रेमसंगता।
भक्तिरित्युच्यते भीष्मप्रह्लादोद्धवनारदैः॥ नारद पांचरात्र

२. अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥
हरिभक्तिरसामृत सिन्धु १।१।११

३. द्रुतस्य भगवद्धर्माद्धारावाहिकतां गता।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते॥ भगवद् भक्ति रसायन १।३

४. स्नेहपूर्वमनुध्यानं भक्तिरित्युच्यते बुधैः।
गीता ७।१ पर रामानुज कृत भाष्य

५. उपाधिनिर्मुक्तमनेकभेदा, भक्तिः समुक्ता परमात्मसेवनम्।
अनन्यभावेन मुहुर्मुहुः सदा, महर्षिभिस्तैः खलु तत्परत्वतः॥
वैष्णवमताब्ज भास्कर ६३

६. भक्ति-स्वामी विवेकानन्द

७. स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते। विवेक चूड़ामणि।३२

८. माहात्म्य ज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा॥ तत्वार्थदीप निबन्ध।४२

प्रति अपने सभी सम्बन्धियों और पदार्थों से ही क्या, प्राणों से भी अधिक अत्यन्त सुदृढ़ अखण्ड प्रेम के प्रवाह को भक्ति कहते हैं।[१]

महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज के मत से भक्ति ह्लादिनी शक्ति की एक विशेष वृत्ति है।[२] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्ति का विवेचन करते हुए लिखा है कि श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। जब पूज्य भाव की वृद्धि के साथ श्रद्धाभाजन के सामीप्य लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो, तो हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए।[३]

इस प्रकार हम देखते हैं कि शांडिल्य ने ईश्वर के प्रति परमानुरक्ति को भक्ति कहा है और आचार्य शुक्ल ने श्रद्धा युक्त प्रेम को भक्ति माना है। जब हमारी अनुरक्ति का आलम्बन ईश्वर होगा, तब वह अपने आप हमारी श्रद्धा का भी आलम्बन होगा। श्रद्धा के लिए यह आवश्यक है कि श्रद्धेय में लोकोत्तर गुण हों। ईश्वर में सभी सात्त्विक गुण निरवधि रूप में स्थित रहते हैं। इस प्रकार ईश्वर की परमश्रद्धेयता सिद्ध हो जाती है। परम श्रद्धेय ईश्वर के प्रति जब हमारे हृदय में परमानुरक्ति उत्पन्न हो जाती है, तब उसे भक्ति की अभिधा प्राप्त होती है।[४] महर्षि शांडिल्य और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की परिभाषाओं का आशय यही है।

भक्ति का स्वरूप

'भक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति और भक्ति की परिभाषाओं पर विचार करने के पश्चात् अब हम वेदों, उपनिषदों, गीता और भागवत आदि ग्रन्थों में प्रतिपादित भक्ति के स्वरूप पर विचार करेंगे।

---

१. तत्रभक्तिर्मर्यादिनिरवधिकानन्तानवद्य कल्याण गुणत्व ज्ञान पूर्वकः।
स्वस्यात्मात्मीय समस्त वस्तुभ्योऽनेक गुणाधिकोऽन्तराय—
सहस्रेणाप्यप्रतिबद्धो निरन्तर प्रेमप्रवाहः। श्रीमन्न्याय सुधा

२. कल्याण-भक्ति रहस्य (हिन्दू संस्कृति अंक-२४।१) पृष्ठ ४३७

३. चिन्तामणि-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—प्रथम भाग—पृष्ठ ३२

४. स्नेहप्रेमश्रद्धाभेदेन लौकिकोऽनुरागस्त्रिविधः। तत्र पुत्र कन्या शिष्यादिषु निम्नगामी अनुरागः स्नेह उच्यते। मित्र कलत्रादिषु समानगामी अनुरागः प्रेम निगद्यते। मातृपितृगुरुजनादिषु च मान्यगामी अनुरागः श्रद्धानाम्ना व्यपदिश्यते। ईश्वराभिमुखी प्रवर्द्धमाना श्रद्धैव भक्तिपदवाच्यतां धत्ते।

पुराणपर्यालोचनम्—प्रथमो भागः—पृष्ठ ७५

वेदों में भक्ति

आचार्य बलदेव उपाध्याय[1] और डॉ० सम्पूर्णानन्द[2] के मत से वैदिक संहिताओं में अनुराग-सूचक 'भक्ति' शब्द का सर्वथा अभाव है। महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा का मत है कि वैदिक साहित्य में भक्ति शब्द का सर्वत्र भाग अर्थ में प्रयोग हुआ है।[3] किन्तु मेरे मत मे वेद में भाग के अतिरिक्त 'श्रद्धा और अनुराग पूर्वक सेवा' के अर्थ में भी 'भक्ति' शब्द का प्रयोग हुआ है। निम्नांकित मंत्रों में सेवार्थक भज् धातु (भज् सेवायाम्) से निष्पन्न भक्ति, भक्त, भज और भजामहे आदि पदों का प्रयोग हुआ है।

भक्ति—

तस्यते भक्ति वांसः स्याम । अथर्ववेद ६।७९।३

भाष्य :—भक्तिवानः श्रद्धावन्तः स्याम भवेम ।

तस्य ते भक्तिवानो भूयास्म । यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता १।५।३१

भक्त—भक्तमभक्तमवो व्यन्तो । ऋग्वेद १।१२७।५

सायण भाष्य—भक्तं सेवमानं अभक्तं असेवमानं च ।

अच्छामि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ । ऋ० १०।४५।९

सायण भाष्य—स्तुतिभिर्हविर्भिश्च देवानां सेवितारं च यजमानं ।

भज—आ न इन्दो वाजे भज । ऋ० १।४३।८

सायण भाष्य—हे इन्दो सोम नः अस्मान् आ भज सर्वतः सेवस्व ।

स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्वनागास्त्व आ भज जीवशंसे ।

ऋ० १।१०४।६

सायण भाष्य—हे इन्द्र ! नः अस्मान् आदित्ये आ भज आभिमुख्येन भक्तान् कुरु :

आ नो भज सौश्रव सेव्वस्न उक्थ उक्थ आ भज शस्यमाने ।

ऋ० १०।४५।

सायण भाष्य—आ भज अभीष्ट फलप्रदानेन सेवस्व ।

भजते—भजते वसूनाम ! ऋग्वेद १।१२३।४

सायण भाष्य—भजते सेवते स्वीकरोतीत्यर्थः ।

भजन्त—

भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः । ऋ० १०।१५।३

---

१. वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त—पं० बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ४५

भागवत सम्प्रदाय—पं० बलदेव उपाध्याय—पृष्ठ ६४

२. कल्याण—भक्ति अंक—(३२।१)—पृष्ठ १०६

३. कल्याण—भक्ति अंक—(३२।१)—पृष्ठ २५३

सायण भाष्य—भजन्त सेवन्ते ।

गां भजन्त मेहनाश्वं भजन्त मेहना । ऋ० ८।४।२१

सायण भाष्य—गां भजन्त असेवन्त ।

बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त । यजुर्वेद १९।५६

उवट भाष्य—भजन्ते सेवन्ते ।

महीधर भाष्य—भजन्त भजन्ते सेवन्ते ।

भजन्ते—

दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते । ऋ० १।१२५।६

सायण भाष्य—दक्षिणावन्तः एव अमृत जरामरण रहितं स्थानं भजन्ते सेवन्ते ।

हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते । ऋ० १०।१०७।२

सायण भाष्य—हिरण्यदाः हिरण्यदातारः ते अमृतत्वम् अमरणधर्मत्वं देवत्वं भजन्ते ।

भजामहे—

महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे । ऋग्वेद १।१५६।३

सायण भाष्य—हे विष्णो ! आ भजामहे, सेवामहे वयं यजमानाः ।

यजुर्वेद के निम्नांकित मंत्र में 'उपासते' पद का प्रयोग हुआ है :—

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।

शुक्ल यजुर्वेद २५।१३

वेदत्रयी के उपासना परक अनेक मंत्रों में ऋषियों की भक्ति-भावना के दर्शन होते हैं। वेद में कहा गया है कि परमेश्वर अमृत, स्वयम्भू और आनन्दमय हैं। जो साधक प्रभु को जान लेता है, वह मृत्यु से अभय हो जाता है।[1] वेदों में पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति और सख्यासक्ति सम्बन्धी मंत्र भी उपलब्ध होते हैं। एक मंत्र में कहा गया है कि हे मनुष्यो ! तुम महान् और सृष्टिकर्ता इन्द्र की पूजा करो। इन्द्र की आश्चर्यजनक शक्ति, विपुलकीर्ति, और सुख-सम्पत्ति की प्रशंसा सभी लोकों में होती है।[2] दास्यासक्ति की भावना से अभिप्रेरित होकर ऋषि अपनी कामना व्यक्त करते हुए कहता है कि जैसे सेवक अपने स्वामी की सेवा करता है उसी प्रकार मैं विश्व का भरण पोषण करने वाले परमदेव परमेश्वर की निष्पाप सेवा करता रहूँ। परमेश्वर

---

१. अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भूः तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः आत्मानं धीरमजरं युवानम् ।। अथर्व० १०।८।४४

२. प्रवो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।
इन्द्रस्य यस्य सुमखं सहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्यतः ।। ऋग्वेद १०।५०।१

सर्वज्ञ हैं और अपने स्तुतिकर्ता भक्त का कल्याण करते हैं।[१] जीव जब प्रभु के सखा-भाव का वरण कर लेता है, तब पवमान प्रभु उसके पवित्र अन्तःकरण को अपनी आनन्दमयी धाराओं से आर्द्र कर देते हैं।[२]

पं० बेणीराम शर्मा गौड़ का मत है कि वेदों में नवधा भक्ति के सभी रूप उपलब्ध होते हैं।[३] किन्तु डॉ० मुंशीराम शर्मा का मत है कि नवधा भक्ति का विकास भागवत भक्ति के प्रचार होने पर हुआ है। अतएव वैदिक मन्त्रों में नवधा भक्ति के सभी रूपों को खोजना असंगत है।[४] मैं डॉ० मुंशीराम शर्मा के मत से सहमत हूँ।

उपनिषदों में भक्ति

उपनिषदों में विशेष रूप से आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध में ही विचार किया गया है, तथापि कतिपय स्थलों में भक्ति[५] और उपासना[६] की भी चर्चा की गयी है। केनोपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्म की प्राप्ति के लिए ही सबको प्रयास करना चाहिए, क्योंकि ब्रह्म ही सबकी उपासना के मूल केन्द्र हैं।[७] प्रभु प्राणियों के हृदय के भीतर अवस्थित हैं। सभी देव उन्हीं की उपासना करते हैं।[८] हृदयस्थ प्रभु का ज्ञान उन्हीं की कृपा होने पर सम्भव है।[९] परमेश्वर की शरण ग्रहण कर उनकी सेवा करने वाले साधक को उसके संचित कर्म बाधित नहीं कर पाते।[१०] ब्रह्म की

---

१. अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥ ऋ० ७।८६।७

२. पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः।
सखित्वमावृणीमहे ॥ ऋ० ९।६१।४

३. कल्याण (भक्ति अङ्क)—३२।१ पृष्ठ ४२

४. भक्ति का विकास—डॉ० मुन्शीराम शर्मा—पृष्ठ १९२

५. यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ श्वेताश्वतर० ६।२३.

६. सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत ॥ छान्दोग्य० ३।१४।१

७. तद्वनमित्युपासितव्यम्। केन उप० ४।६

८. ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ॥ क० उप० २।२।३

९. अणोरणीयान् महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको, धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥ श्वेता० ३।२०

१०. सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम्।
तत्र योनिं कृणवसे न हि ते पूर्तमक्षिपत्। श्वेता० २।७

प्राप्ति न तो प्रवचन से होती है और न बुद्धि से। ब्रह्म ही कृपाकर जिसे स्वीकार कर लेते हैं, उसी को ब्रह्म की प्राप्ति होती है। साधक के लिए परमात्मा अपने यथार्थ स्वरूप को व्यक्त कर देते हैं।[१]

श्री मद्भगवद्गीता में भक्ति

गीता में कहा गया है कि अनन्य भक्ति होने पर ही भगवान् दर्शन देते हैं।[२] यद्यपि भगवान् समदर्शी हैं, किन्तु अनन्य भक्तों पर उनका अनुराग होता है।[३] वे प्रेम पूर्वक अर्पित पत्र-पुष्प को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं।[४] भगवान् अनन्य परायण भक्तों के योगक्षेम के उत्तरदायित्व को स्वयं वहन करते हैं।[५] वे भक्तों को सभी पापों से मुक्त कर देते हैं।[६] अतः हमें अपने सभी कर्म प्रभु को अर्पित कर उनकी भक्ति करनी चाहिए।[७]

वेदान्त दर्शन में भक्ति

वेदान्त दर्शन प्रभु की प्राप्ति के अनेक साधनों में से भक्ति को सरलतम और सर्वोत्तम साधन के रूप में स्वीकार करता है।[८] वेदान्त-दर्शन में जीवमात्र को भक्ति

---

१. नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष विवृणुते तनुं स्वाम् ॥ मुंडक उपनिषद् ३।२।३

२. पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ गीता ८।२२
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ गीता ११।५४

३. समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ गीता ९।२१

४. पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ गीता ९।२६

५. अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ गीता ९।२२

६. सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ गीता १८।६६

७. यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम् ॥ गीता ९।२७
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ गीता १८।६५

की ओर उन्मुख करते हुए कहा गया है कि श्रुति-स्मृतियों में आदेश होने से ब्रह्म की उपासना करना प्रत्येक जीव का कर्त्तव्य है।[१] उपासना करने से निराकार प्रभु साकार होकर दर्शन देते हैं।[२] भक्त के ऊपर प्रभु का विशेष अनुग्रह होता है। संकट उपस्थित होने पर भी भक्ति सम्बन्धी कर्म या भागवत धर्म का परित्याग नहीं करना चाहिए; क्योंकि श्रुति और स्मृति दोनों के निश्चयात्मक वर्णन से यही विधेय कर्म सिद्ध होता है।[४] जो साधक भक्ति-सम्बन्धी आचार धर्म का पालन करता है, वह पापों से अनभिभूत रहता है।[५] इसके अतिरिक्त आश्रम-धर्मों के अभाव में भी केवल उपासना विषयक अनुष्ठान से ही परमात्मा की प्राप्ति सुम्भव है। अतएव जीव के लिए भक्ति ही ग्राह्य है।[५]

श्रीमद्भागवत में भक्ति

वैष्णवों के कण्ठहार श्रीमद्भागवत में भक्तितत्त्व का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। वेदव्यास ने लिखा है कि संसार में भगवान् के जन्म और लीलाओं की अनेक मङ्गलमयी कथायें प्रसिद्ध हैं। भक्त को उन कथाओं को सदैव सुनते रहना चाहिये। भगवान् के गुणों और लीलाओं का स्मरण दिलाने वाले उनके बहुत से नाम भी प्रसिद्ध हैं। लाज-संकोच त्याग कर भक्त को भगवान् के नामों का गान करते रहना चाहिए।[६]

जो भक्त इस प्रकार का विशुद्ध व्रत ले लेता है, उसके हृदय में अपने परम प्रियतम प्रभु के नाम-कीर्तन से प्रेम-अंकुर उग आता है और उसका चित द्रवित हो जाता है। वह स्वभाव से ही मतवाला सा होकर कभी खिलखिलाकर हँसने लगता है, तो कभी फूट-फूटकर रोने लगता है। कभी ऊँचे स्वर से भगवान् को पुकारने लगता है, तो कभी मधुर स्वर से उनके गुणों का गान करने लगता है। कभी-कभी जब वह अपने प्रियतम को अपने नेत्रों के सामने अनुभव करता है; तब उन्हें रिझाने के के लिए नृत्य भी करने लगता है।[७] जैसे प्रत्येक ग्रास के साथ ही भोजन करने वाले

१. सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्। वे० द० १।२।१
२. अपि च संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्। वे० द० ३।२।२४
३. विशेषानुग्रहश्च। वे० द० ३।४।३८
४. सर्वथापि त एवोभयलिङ्गात्। वे० द० ३।४।३४
५. अनभिभवं च दर्शयति। वे० द० ३।४।३५
६. शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन् विलज्जो विचरेदसंगः॥ भागवत ११।२।३६
७. एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥ भागवत ११।२।४०

व्यक्ति की तुष्टि, पुष्टि और क्षुधा-निवृत्ति; ये तीनों क्रियायें एक साथ होती जाती हैं, वैसे ही जो मनुष्य भगवान् की शरण में आकर भजन करने लगता है; उसे भजन के प्रत्येक क्षण में भगवान् के प्रति प्रेम, उनके स्वरूप का अनुभव और उनके अतिरिक्त अन्य वस्तुओं में वैराग्य, इन तीनों की एक साथ ही स्थिति हो जाती है।[१] भक्त का धर्म है कि वह भगवान् की कथा सुनने में श्रद्धा रखे और प्रभु का निरन्तर ध्यान करे जो कुछ मिले; उसे प्रभु को समर्पित कर दे और दास्यभाव से उन्हें आत्मनिवेदन करे।[२] साधक के हृदय में भक्ति के उदय होने का क्रम निर्धारित करते हुए भागवतकार ने लिखा है कि सत्संग करने और भक्तों की चर्चा करते रहने से भगवान् के दिव्यगुणों, अनन्त शक्ति और ऐश्वर्य के कारण साधक के हृदय में भगवान् के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। श्रद्धा से प्रेम उत्पन्न होता है और अन्त में श्रद्धा तथा प्रेम के संयोग से भक्ति का उदय होता है।[३]

निर्गुण भक्ति-योग

भागवत में निर्गुण भक्ति-योग का उल्लेख करते हुए कपिल मुनि ने कहा है कि जिस प्रकार गंगा का जल अखण्डरूप से समुद्र की ओर बहता रहता है, उसी प्रकार भगवान् के गुणों के श्रवणमात्र से तैल धारावत् अविच्छिन्न रूप से पुरुषोत्तम में मन का आसक्त होना और उनके प्रति निष्काम और अनन्य प्रेम होना, निर्गुण भक्तियोग का लक्षण है। भगवत्-सेवा के लिए मुक्ति का तिरस्कार करने वाली भक्ति ही जीव का साध्य है। इसके द्वारा पुरुष तीनों गुणों को लांघकर परमात्मा के प्रेमरूप अप्राकृत स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।[४] जो भक्त सब प्रकार के संग्रह-परिग्रह से रहित है, जिनका चित्त प्रभु के प्रेम के रंग में रंग गया है, जो संसार की

---

१. भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥ भागवत ११।२।४२

२. मत्कथा श्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव।
सर्वलाभोपहरणं दास्येनात्मनिवेदनम् ॥ भागवत ११।११।३५

३. सतां प्रसंगान्मम वीर्य संविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥ भागवत ३।२५।२५

४. मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसोऽम्बुधौ ॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥
स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः।
येनातिव्रज्यत्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते ॥ भागवत ३।२९।११,१२,१४

वासनाओं से शान्त हो चुके हैं और जो अपनी महत्ता के कारण स्वभाव से ही समस्त प्राणियों के प्रति दया और प्रेम का भाव रखते हैं, जिनमें किसी प्रकार की कामना शेष नहीं रह गयी है, उन्हें प्रभु के परमानन्द स्वरूप का अनुभव होता है।[१] जब ब्रह्म को सर्वत्र देखने का अभ्यास किया जाता है; तब थोड़े ही समय में भक्त को सब कुछ ब्रह्मस्वरूप दिखलायी पड़ने लगता है। ऐसी दृष्टि हो जाने पर भक्त के सारे संशय-सन्देह अपने आप निवृत हो जाते हैं और वह प्रभु का सर्वत्र साक्षात्कार करता हुआ संसार से विरक्त हो जाता है।[२] जिसका चित्त एक मात्र भगवान् में ही लग गया है; ऐसे मनुष्य की वेद-विहित कर्मों में लगी हुई या विषयों का ज्ञान प्राप्त कराने वाली इन्द्रियों के प्रति जो स्वाभाविक प्रवृत्ति है, वही भगवान् की अहैतुकी भक्ति है। यह अहैतुकी भक्ति मुक्ति से भी बढ़कर है; क्योंकि जिस प्रकार जठरानल खाये हुए अन्न को पचाता है; उसी प्रकार यह भक्ति भी कर्म-संस्कारों के भण्डार रूप लिंग शरीर को तत्काल भस्म कर देता है।[३]

महाभारत का नारायणीय खण्ड

महाभारत के शान्ति पर्व के अन्तर्गत नारायणीय खण्ड में भक्ति के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि एक बार नारद ऋषि; नर और नारायण के दर्शनार्थ बदरिकाश्रम गये।[४] वहाँ नारद को नारायण के दर्शन हुए; जो आद्या[५] प्रकृति के रूप में सनातन परमात्मा[६] की पूजा में तल्लीन थे। नारायण की प्रेरणा से नारद

१. निष्किंचना मय्यनुरक्त चेतसः शान्ता महान्तोऽखिल जीव वत्सलाः।
कामैरनालब्धधियो जुषन्ति यत् तन्नैर पेक्ष्यं न विदुः सुखं मम॥
भागवत ११।१४।१७

२. सर्वं ब्रह्मात्मकं तस्य विद्ययात्ममनीषया।
परिपश्यन्नुपरमेत् सर्वतो मुक्तसंशयः॥ भागवत ११।२६।१८

३. देवानां गुणलिंगानामानुश्रविककर्मणाम्।
सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या।
अनिमित्ता भागवती वृत्तिः सिद्धिर्गरीयसी।
जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा। भागवत ३।२५।३२-३३

४. महामेरोगिरेः शृंगात् प्रच्युतो गन्धमादनम्।
नारदः सुमहद्दद्भुतं सर्वलोकान चीचरत्।
तं देशमगद् राजन् बदर्याश्रममाशुगः। महाभारत।शान्ति पर्व। ३३४।१३, १४

५. अव्यक्ता व्यक्तभावस्था या सा प्रकृतिरव्यया। महाभारत।शान्ति पर्व। ३३४।३१

६. एवं ज्ञात्वा तमात्मानं पूजयावः सनातनम्। महाभारत।शान्ति पर्व।३३४।४२

आद्यप्रकृति के दर्शन-हेतु मेरु शृंग पर स्थित श्वेतद्वीप पहुँचे।[1] वहाँ नारद को भगवान् के भक्तों के दर्शन हुए। श्वेतद्वीपवासी भक्त इन्द्रियों से विहीन, किसी भी वस्तु को न खाने वाले, पापरहित, छत्र के समान शिर वाले, मेघ की गर्जना के समान निनाद करने वाले तथा सूर्य के समान देदीप्यमान थे।[2] श्वेतद्वीप में नारद की स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् ने नारद को अपना विश्व रूप दिखलाया।[3] इसी प्रसंग में कहा गया है कि पूर्वकाल में राजा वसु उपरिचर[4] और सप्तचित्र शिखंडियों[5] को कठिन तपश्चर्या के पश्चात् सात्वत धर्म का पालन करने पर भगवान् के दर्शन हुए थे। सप्त-चित्र शिखंडियों में मारीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु एवं वशिष्ठ ऋषि थे। आठवें स्वायम्भुव थे।[6] इन्हीं आठ ऋषियों के मनन-चिन्तन के फलस्वरूप लक्षश्लोकात्मक भक्तिशास्त्र का उद्भव हुआ है।[7]

महाभारतकार ने कहा है कि वासुदेव चतुर्व्यूहात्मक हैं। सम्पूर्ण जीव

---

१. यदर्थमात्मप्रभवेण जन्म कृतं त्वया धर्मगृहे चतुर्धा।
तत् साध्यतां लोकहितार्थमद्य गच्छामि द्रष्टुं प्रकृतिं तवाद्याम् ॥
महाभारत।शान्ति पर्व।३३५।२

२. समुत्पपातोत्तमयोगयुक्तस्ततोऽधिमेरौ सहसा निलिल्ये।
तत्रावतस्थे च मुनिर्मुहूर्तमेकान्तमासाद्य गिरेः नगशृङ्गे ॥
आलोकयन्नुत्तर पश्चिमेन ददर्श चाप्यद्भुतमुक्तरूपम्।
क्षीरोदधेरुत्तरतो हि द्वीपः श्वेतः स नाम्ना प्रथितो विशालः ॥
मेरोः सहस्रैः स हि योजनानां द्वात्रिंशतोर्ध्वं कविभिर्निरुक्तः।
अनिन्द्रियाश्चानशनाश्च तत्र निष्पन्दहीनाः सुसुगन्धिनस्ते ॥
महाभारत।शान्ति पर्व।३३५।७-९

३. एवं स्तुतः स भगवान् गुह्यैस्तथ्यैश्च नामभिः।
तं मुनिं दर्शयामास नारदं विश्वरूपधृक् ॥ महाभारत।शान्ति पर्व।३३९।१

४. राजोपरिचरो नाम बभूवाधिपतिर्भुवः।
आखण्डलसखः ख्यातो भक्तो नारायणं हरिम् ॥ महाभारत।शान्ति पर्व।३३५।१७

५. ये हि ते ऋषयः ख्याताः सप्त चित्र शिखंडिनः। महाभारत।शान्ति पर्व ३३५।२७

६. मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
वशिष्ठश्च महातेजास्ते हि चित्रशिखंडिनः ॥
सप्त प्रकृतयो ह्येतास्तथा स्वायम्भुवोऽष्टमः।
एताभिर्धार्यते लोकस्ताभ्यः शास्त्रं विनिःसृतम् ॥
महाभारत।शान्ति पर्व। ३३५।२७-३०

७. इदं शतसहस्रं हि श्लोकानामिदमुत्तमम्। महाभारत।शान्ति पर्व। ३३५।३६

संकर्षण के नाम से जाने जाते हैं और संकर्षण वासुदेव के ही एक रूप हैं। संकर्षण से प्रद्युम्न उत्पन्न हुए, जो मन के प्रतीक हैं। इसी प्रकार अहङ्कार के प्रतीक अनिरुद्ध का जन्म प्रद्युम्न से हुआ। वासुदेव से वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम और कृष्ण आदि अवतार होते हैं।[1]

शांडिल्य-भक्ति-सूत्र

महर्षि शांडिल्य कृत भक्ति-सूत्र में भक्ति की तात्त्विक व्याख्या उपलब्ध होती है। महर्षि शांडिल्य ने भक्ति का विवेचन करते हुए लिखा है कि प्रेमरूपा भक्ति अंगी है और ज्ञान तथा योग उसके अंग हैं; क्योंकि ज्ञान और योग, भक्ति की अपेक्षा रखते हैं।[2] इस प्रकार अङ्गी भक्ति अपने अङ्गों-कर्म, योग और ज्ञान-से श्रेष्ठ सिद्ध हुई।[3] भक्ति की दृढ़ता एवं निर्मलता का ज्ञान लौकिक प्रीति की भाँति भगवत्कथा श्रवण, नाम कीर्तन आदि में रोमांच, अश्रुपात आदि चिह्नों से होता है।[4]

भगवान् के जन्म और कर्म, दोनों दिव्य होते हैं।[5] इस प्रकार भगवान् के प्रति जो भक्ति होती है, वह भी पराभक्ति है।[6] पराभक्ति की प्राप्ति गौणी भक्ति से होती है।[7] साधन भक्ति (नवधा भक्ति) ही गौणी भक्ति कही जाती है। नवधा भक्ति के श्रवण, कीर्तन आदि किसी भी एक साधन का विशेष रूप से अनुष्ठान करने पर वही साधन पराभक्ति को प्राप्त कराने में समर्थ हो जाता है।[8]

भक्ति में उच्च जाति से लेकर चांडालादि नीच जाति तक के मनुष्यों का समान रूप से उसी प्रकार अधिकार है; जिस प्रकार अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि सामान्य धर्मों के पालन में सबका समान अधिकार होता है।[9] पराभक्ति प्राप्त हो जाने पर भक्त के संचित और क्रियमाण कर्मों के फल का नाश हो जाता है और प्रारब्ध के अशेष होते ही भक्त को भगवान् की प्राप्ति और मुक्ति की सिद्धि हो जाती है।[10]

---

१. वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत—डॉ० भण्डारकर—पृष्ठ ७
२. सा मुख्येतरापेक्षितत्वात् । शांडिल्य भक्ति सूत्र।१०
३. तदैव कर्मिज्ञानि योगिभ्य आधिक्यशब्दात् । शां० भ० सू०।२२
४. तत्परिशुद्धिश्च गम्या लोक वल्लिंगेभ्यः । शां० भ० सू०।४३
५. तच्च दिव्यं स्वशक्तिमात्रोद्भवात् । शांडिल्य भक्ति सूत्र।४८
६. तद्भावयशेषात् प्रादुर्भावेष्वपि सा । शांडिल्य भक्ति सूत्र।४६
७. भक्त्या भजनोपसंहाराद्गौण्या परायैतद्हेतुत्वात् । शांडिल्य भक्ति सूत्र।५६
८. ईश्वर तुष्टेरेकोऽपि बली । शांडिल्य भक्ति सूत्र।६३
९. आनिन्द्ययोन्यधिक्रियते पारम्पर्यात् सामान्यवत् । शांडिल्य भक्ति सूत्र।७८
१०. आयुश्चिरंतनत्वात् न हानिरनास्पदत्वात् । शां० भ० सू०।९७

नारद-भक्ति-सूत्र

नारद-भक्ति-सूत्र में प्रेमाभक्ति के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि भक्ति परमप्रेम रूपा और अमृत स्वरूपा है।[१] इस प्रेमरूपा भक्ति को प्राप्त कर लेने पर मनुष्य न तो किसी वस्तु की इच्छा करता है, न शोक करता है और न द्वेष ही करता है। वह किसी वस्तु में न तो आसक्त ही होता है और न विषयभोगों की प्राप्ति में उसे उत्साह ही होता है।[२] व्रजगोपियों में यही प्रेमरूपा भक्ति थी।[३] ज्ञान इस प्रेमरूपा भक्ति का साधन है[४] और यह भक्ति कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठ है।[५]

पराभक्ति-प्रेमाभक्ति-का विवेचन करने के पश्चात् साधन भक्ति-गौणी भक्ति-का उल्लेख करते हुए महर्षि नारद ने कहा है कि गौणी भक्ति गुण भेद से सात्विकी, राजसी और तामसी, तीन प्रकार की होती है। इसी प्रकार आर्त, जिज्ञासु तथा अर्थार्थी; इन तीन प्रकार के पुरुषों के भेद से भी गौणी भक्ति तीन प्रकार की होती है।[६] भक्ति के इन प्रकारों में परवर्ती प्रकार की अपेक्षा क्रमशः पूर्ववर्ती प्रकार की भक्ति उत्तम तथा शीघ्र कल्याण करने वाली होती है।[७] अनन्य भक्ति की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि नित्य दास्य भाव से या नित्य कान्ताभाव से प्रेम करना अनन्य भक्ति का लक्षण है।[८] भक्ति में सबका समान अधिकार है। भक्ति में जाति, विद्या, रूप, कुल और क्रिया का भेद नहीं होता।[९]

शांडिल्य और नारद द्वारा प्रणीत भक्तिसूत्रों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि दोनों ही महर्षियों के मत से गोपियों में उत्कृष्ट प्रेमाभक्ति थी; किन्तु शांडिल्य के मत से गोपियों में ज्ञान का अभाव था,[१०] जबकि नारद के मत से

---

१. सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा। अमृत स्वरूपा च। नारद भक्ति सूत्र २, ३

२. यत्प्राप्य न किंचिद्वांछति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति।
नारद भक्ति सूत्र। ५

३. यथा व्रजगोपिकानाम्। नारद भक्ति सूत्र। २१

४. तस्या ज्ञानमेव साधनमित्येके। नारद भक्ति सूत्र। २८

५. सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा। नारद भक्ति सूत्र। २५

६. गौणी त्रिधा गुणभेदादार्तादि भेदाद्वा। नारदभक्ति सूत्र ५६

७. उत्तरस्मादुत्तरस्मात्पूर्वपूर्वा श्रेयाय भवति। ना० भ० सू०।५७

८. त्रिरूपभंगपूर्वकं नित्यदास्यनित्यकान्ताभजनात्मकं वा प्रेमैव कार्यम् प्रेमैव कार्यम्।
नारद भक्ति सूत्र ६६

९. नास्ति तेषु जाति विद्या रूपकुल धन क्रियादिभेदः। नारद भक्ति सूत्र ७२

१०. अतएव तदभावाद्बल्लवीनाम्। शांडिल्य भक्ति सूत्र १४

गोपियों को भगवान् के माहात्म्य का ज्ञान था।[१] भागवत में कहा गया है कि गोपियों को भगवान् के महत्त्व का ज्ञान था।[२] अतएव इस प्रसंग में नारद का कथन उचित प्रतीत होता है।

भक्ति-रसायन

भक्ति-रसायन के लेखक श्री मधुसूदन सरस्वती अद्वैत-वेदान्त के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इसलिए भक्ति-रसायन में लेखक की अद्वैत-भावना का प्रभाव दिखलायी पड़ता है।

श्री मधुसूदन सरस्वती के मत से सुख की प्रत्यक्ष प्रतीति और भक्ति-निरूपक शास्त्रों के अध्ययन से यह विदित होता है कि भक्ति दृष्टादृष्ट फलवाली है। जिस प्रकार ग्रीष्म से संतप्त व्यक्ति जब गंगा-स्नान करता है; तब उसका सन्ताप दूर हो जाता है और उसे शीतलता प्राप्त होती है; यह दृष्ट अर्थात् प्रत्यक्ष फल है। गंगा-स्नान से जो पुण्य की प्राप्ति और पापों का क्षय होता है, वह अदृष्टफल हुआ।[३] इसी प्रकार भक्ति से भी भगवद्विषयक आह्लाद के रूप में दृष्टफल और भक्ति-विधायक शास्त्रों से भक्ति का अदृष्टफल सिद्ध होता है। रजोगुण और तमोगुण से जब सत्त्वगुण का अंश अभिभूत रहता है, तब भक्ति के दृष्टफल में प्रतिबन्ध लग जाता है, किन्तु अदृष्टफल क्षीण नहीं होता। जैसे—शीत, वात आदि से आतुर व्यक्ति यदि गंगा-स्नान करे, तो उसे दृष्टफल की प्रतीति नहीं होती; किन्तु उसका अदृष्टफल नष्ट नहीं होता। वर्तमान शरीर के द्वारा भोगने योग्य फल दृष्ट कहा गया है और जो आगामी देह से भोगने योग्य फल है, उसे अदृष्ट कहते हैं।[४] जीवन्मुक्तों को आगामी देह की प्राप्ति नहीं होती, इसलिए उनका अदृष्टफल प्रतिबन्धित रहता है।[५]

---

१. तत्रापि न माहात्म्यज्ञान विस्मृत्यपवादः। नारद भक्ति सूत्र २२

२. मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान् देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून्॥
भागवत १०।२९।३१
व्यक्तं भवान् व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो देवो यथाऽऽदि पुरुषः सुरलोक गुप्ता।
भागवत १०।२९।४१

३. दृष्टादृष्ट फला भक्तिः सुखव्यक्तेर्विधेरपि।
निदाघदून देहस्य गंगास्नानक्रिया यथा॥ भक्ति रसायन २।४८

४. वर्तमान तनुप्राप्यं फलं दृष्टमुदाहृतम्।
भाविदेहोपभोग्यं यत्तददृष्टमुदीरितम्॥ भक्ति रसायन २।५०

५. तथैव जीवन्मुक्तानामदृष्टांशो न विद्यते। भक्ति रसायन २।४९

हरिभक्ति-विलास

हरिभक्ति विलास के प्रणेता श्रीसनातन गोस्वामी थे[1], किन्तु इसका संग्रहण आचार्य गोपाल भट्ट ने किया था।[2] श्री सनातन गोस्वामी ने भक्ति का महत्त्व बतलाते हुए लिखा है कि भगवन्नाम का कीर्तन करने से साधक के पाप नष्ट हो जाते हैं, साधक अभय हो जाता है और उसका प्रारब्ध नष्ट हो जाता है। भगवन्नाम का स्मरण करने से साधकों में शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है।[3] पहले तो भक्त पापकर्म और अनुचित कर्म में प्रवृत्त ही नहीं होता है, यदि उसमें पड़ भी जाये, तो भगवद्भक्ति उसके सभी पापों और दुष्कर्मों के फल को नष्ट कर देती है।[4]

भक्ति परम पावन और जीव का परम धर्म है।[5] भक्ति से साधक के अहंकार का उन्मूलन हो जाता है। भक्ति मोक्ष से भी बढ़कर है और वैकुण्ठ की प्राप्ति का अन्यतम साधन है।[6]

हरिभक्ति रसामृत सिन्धु

श्री रूपगोस्वामी (सन् १४९२ ई०-१५९१ ई०) भक्ति तथा विद्वत्ता के ज्वाज्वल्यमान प्रतीक थे। भक्ति शास्त्र के गूढ़ सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना उनके जीवन का प्रधान कार्य था। उन्होंने उज्ज्वल नीलमणि तथा हरिभक्ति रसामृत सिन्धु में भक्ति का रसरूप में शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया है।[7] हरिभक्ति रसामृतसिन्धु में मधुरा भक्ति का सांगोपांग वर्णन उपलब्ध होता है।

श्री रूप गोस्वामी ने भक्ति के स्वरूप पर विचार करते हुए कहा है कि विधिमार्ग का अनुसरण करने वाले साधक के हृदय में माहात्म्यज्ञानयुक्त प्रेमाभक्ति और रागानुगाभक्ति का अनुष्ठान करने वाले साधक के हृदय में प्रेमाभक्ति उत्पन्न होती

---

१. भागवत सम्प्रदाय—पृष्ठ ५०८

२. भागवत सम्प्रदाय—पृष्ठ ५१२

३. हरिभक्ति विलास—एकादश विलास—पृष्ठ ६१७-६४०

४. तथादौ भक्तिमतः कर्थंचिदापतितेऽपि पापे।
प्रायश्चित्तान्तर निरसनत्वम्।
विषयभोगेऽपि तद्दोषनिराकरत्वम। हरि भक्ति विलास—पृष्ठ ६६३-६६४

५. यस्यास्तिभक्तिर्भगवत्य किचना सर्वैगुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथे नासति धावतो बहिः।
हरिभक्ति-विलास ११।३२०

६. हरिभक्ति विलास, पृष्ठ ६६६-६७?

७. भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ ५०६-५०७

है।[1] प्रेमाभक्ति के उदय का क्रम निर्धारित करते हुए श्री रूप गोस्वामी ने लिखा है कि साधक के हृदय में सर्वप्रथम भगवान् के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होता है; तत्पश्चात् साधक साधु संग और संत-सेवा करने लगता है। संत-सेवा और भगवान् का भजन करने से साधक के अनर्थों की निवृत्ति हो जाती है। इससे उसके हृदय में भगवान् के प्रति निष्ठा और रुचि उत्पन्न होती है। धीरे-धीरे भगवान के प्रति साधक की आसक्ति बढ़ती जाती है। इस प्रकार क्रमशः भाव-भक्ति की पुष्टि होने पर प्रेमाभक्ति का उदय हो जाता है, जो जीव के कल्याण का सर्वोत्तम हेतु है।[2]

भक्ति की विशेषतायें

श्री रूपगोस्वामी के मत से भक्ति (१) क्लेशघ्नी (२) शुभदा (३) मोक्षलघुताकृत् (४) सुदुर्लभा (५) सान्द्रानन्द विशेषात्मा और (६) कृष्णाकर्षणी होती है।[3] अर्थात् भक्ति भक्तों को क्लेशों से मुक्तकर उनका कल्याण करती है। प्रेमा भक्ति की भूमिका में स्थित साधक की दृष्टि में मोक्ष-सुख निस्सार होता है। भगवान् की भक्ति उन्हीं की कृपा होने पर प्राप्त होती है। भक्ति की भूमिका पूर्ण आनन्दमयी है और वह भगवान् के अनुग्रह को प्राप्त करा देती है। प्रेमाभक्ति के रस में अन्तर्लीन भक्त से भगवान् स्वयं प्रेम करने लगते हैं।[4]

भक्ति का जन्म-स्थान

यद्यपि भक्ति का जन्म अत्यन्त प्राचीन काल में हुआ था, किन्तु मध्ययुग में उसका पुनरुत्थान द्रविड़ देश में और पोषण वृन्दावन में हुआ। भक्ति के प्रसार में दक्षिण के अलवार सन्तों और वृन्दावन के पुष्टिमार्गी महात्माओं का योगदान विशेष उल्लेखनीय रहा है। भागवत माहात्म्य में भक्ति की उत्पत्ति द्रविड़ देश में बतलायी गयी है—

१. महिम ज्ञान युक्तः स्याद्विधिमार्गानुसारिणाम् ।
राणानुगाश्रितानां तु प्रायशः केवलोभवेत् । हरिभक्ति रसामृत सिन्धु १।४।५

२. आदौश्रद्धा ततः साधुसंगोऽथ भजनक्रिया ।
ततोऽनर्थ निवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः ।।
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाऽभ्युदंचति ।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः ।। हरिभक्ति रसामृत सिन्धु १।४।६,७

३. क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत् सुदुर्लभा ।
सान्द्रानन्द विशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षणी च सा ।।
हरिभक्ति रसामृतसिन्धु—पूर्व विभाग १।१३

४. हिन्दी वैष्णव-साहित्य में रस-परिकल्पना—डा० प्रेमस्वरूप—पृष्ठ १६४-१६५

अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ ।
ज्ञान वैराग्य नामानौ कालयोगेन जर्जरौ ॥
उत्पन्ना द्राविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता ।
क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता ॥
वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी ।
जाताहं युवती सम्यक्प्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम् ॥

पद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवत माहात्म्ये भक्ति नारदो समागमो नाम प्रथमोऽध्यायः । ४५, ४८, ५०

भागवत के निम्नांकित श्लोक में कहा गया है कि द्रविड़ देश में भक्त अपेक्षाकृत अधिक पाये जाते हैं—

क्वचित् क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः ।
ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥ भागवत ११।५।३९
कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ।
ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर ।
प्रायो भक्ता भगवति वासुदेवेऽमलाशयाः ॥ भागवत ११।५।४०

डॉ० एम० जार्ज का मत है कि भागवत माहात्म्यम् तथा पद्मपुराण के आधार पर भक्ति का उदय-स्थान दक्षिण भारत मानना गलत है।[1] डॉ० रतिभानु सिंह नाहर का मत है कि इतना तो स्वीकार ही करना पड़ेगा कि पूर्व मध्यकालीन भक्ति (प्राचीन भक्ति नहीं) की उद्गम-भूमि द्रविड़ ही है।[2] डॉ० मलिक मोहम्मद का विचार है कि भारतीय वैष्णव भक्ति-आन्दोलन का प्रारम्भ आलवार भक्तों से ही मानना संगत है।[3] मेरे मत से भक्ति सार्वकालिक और सार्वत्रिक रही है। उसका जन्म वेदों की यज्ञ-परम्परा और उपनिषदों के तत्त्वज्ञान से हुआ है। गीता और भागवत के द्वारा उसका पोषण हुआ और मध्ययुग के दक्षिणी आलवारों ने उसका पल्लवन किया। रामानुज, वल्लभ और रामानन्द ने उसे सम्पूर्ण भारत में पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित कर दिया। इस प्रकार मध्ययुग में भक्तियुग का पुनरुत्थान दक्षिण भारत में हुआ। सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं विशेष रूप से हिन्दी का मध्ययुगीन साहित्य भक्ति के इस अवदान से अनुप्राणित हुआ है।

भक्ति की एकादश भूमिकायें

आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने भक्ति की एकादश भूमिकाओं का उल्लेख करते हुए भक्ति के क्रमिक उदय का वर्णन किया है। महापुरुषों की सेवा करने से जीव

---

१. भक्ति-आन्दोलन और साहित्य—डॉ० एम० जार्ज, पृष्ठ १६६
२. भक्ति-आन्दोलन का अध्ययन—डॉ० रतिभानु सिंह नाहर, पृष्ठ १६३
३. भक्ति-आन्दोलन के प्रेरणा स्रोत—डॉ० मलिक मोहम्मद, पृष्ठ ५

सर्वप्रथम उनकी दया का पात्र बनता है। तदनन्तर वह महापुरुषों के सात्विक आचरण और धर्म के प्रति श्रद्धालु होता है। इसके पश्चात् जीव के हृदय में भगवद्गुण-श्रवण में अनुराग का अंकुरण होता है, तब जीव को भगवान् के स्वरूप का ज्ञान होता है। ज्ञान होने पर जीव के हृदय में भगवान के प्रति तीव्र प्रेम उत्पन्न हो जाता है। ऐसी स्थिति में उसे भगवान् के दर्शन होने लगते हैं। उसके हृदय में भगवद्धर्मों के प्रति निष्ठा उत्पन्न हो जाती है और उसे भक्त के गुणों का अनुभव होने लगता है। अन्त में जीव के हृदय में पराभक्ति, प्रेमाभक्ति का अभ्युदय हो जाता है।[१] भक्ति की उपर्युक्त एकादश भूमिकायें इस प्रकार हैं :—

१. महत्सेवा
२. तद्दयापात्रता
३. तद्धर्म में श्रद्धा
४. हरिगुणश्रुति
५. रत्यंकुरोत्पत्ति
६. स्वरूपाधिगति
७. प्रेम वृद्धि
८. भगवद्दर्शन
९. भगवद्धर्म निष्ठा
१०. तद्गुणशालिता
११. प्रेम की पराकाष्ठा

भक्ति के भेद

भक्ति के दो भेद होते हैं :—

१—साधन भक्ति या गौणी भक्ति
२—साध्या भक्ति या प्रेमा भक्ति

प्रेमा-भक्ति की प्राप्ति साधन-भक्ति से होती है।[२] शांडिल्य के मत से गौणी भक्ति साधक की भावना और स्थिति भेद से तीन प्रकार की होती है[३] :—

१—आर्त-भक्ति
२—जिज्ञासा-भक्ति
३—अर्थार्थिता भक्ति

नारद के मत से गौणी भक्ति के निम्नांकित तीन भेद होते हैं—[४]

---

१. प्रथमम्महतां सेवा तद्दयापात्रता ततः।
श्रद्धाथ तेषां धर्मेषु ततो हरिगुणश्रुतिः॥
ततो रत्यं कुरोत्पत्तिः स्वरूपाधिगतिस्ततः।
प्रेमवृद्धिः परानन्दे तस्याथ स्फुरणं ततः॥
भगवद्धर्मनिष्ठाऽतस्तस्मिंस्तद्गुणशालिता।
प्रेम्णाऽथ परमा काष्ठेत्युदिता भक्ति भूमिकाः॥ भक्ति रसायन १।३४-३६

२. भक्त्या भजनोपसंहाराद्गौण्या परायैतद् हेतुत्वात्। शांडिल्य भक्तिसूत्र ५६

३. गौणं त्रैविध्यमितरेण स्तुत्यर्थत्वात् साहचर्यम्। शांडिल्य भक्तिसूत्र ७२

४. गौणी त्रिधा गुणभेदादार्तादिभेदाद्वा। नारद भक्तिसूत्र ५६

१—सात्त्विकी भक्ति :—जो भक्ति सर्वकर्मफल को भगवान के चरणों में अर्पित करने के उद्देश्य से की जाती है।[1]

२—राजसी भक्ति :—जो भक्ति ऐश्वर्य की कामना से की जाती है।[2]

३—तामसी भक्ति :—जो भक्ति दम्भ और क्रोध-भाव से की जाती है।[3]

श्री मधुसूदन सरस्वती के मत से चित्तद्रुति के कारणों में भेद होने के कारण भक्ति के निम्नांकित चार भेद होते हैं[4] :—

१—राजसी　　　　　　　　३—सात्त्विकी

२—तामसी　　　　　　　　४—मिश्रिता

राजसी भक्ति ईर्ष्याजन्य द्वेष से, तामसी भक्ति भयजन्य द्वेष से, शुद्ध सात्त्विकी भक्ति हर्षातिरेक से और मिश्रिता भक्ति काम और शोकादि से उत्पन्न होती है।[5]

श्री रूपगोस्वामी के मत से भक्ति तीन प्रकार की होती हैं[6]—

१—साधन भक्ति　　　　२—भाव भक्ति　　　　३—प्रेमा भक्ति

१—साधन भक्ति

इष्टदेव के प्रति उपाय-साध्य भाव को साधन भक्ति कहते हैं।[7] साधन भक्ति के दो उपभेद होते हैं[8]—

१—वैधी　　　　　　　　२—रागानुगा

---

१. कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन्वा तदर्पणम् ।
यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ॥ भागवत।३।२९।१०

२. विषयानभिसंधाय यश ऐश्वर्यमेव वा ।
अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ॥ भागवत।३।२९।९

३. अभिसंधाय यो हिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा ।
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः ॥ भागवत।३।२९।८

४. चित्तद्रुतेः कारणानां भेदात् भक्तिस्तु भिद्यते ।
तान्युक्तानि तु संक्षेपाद् व्याख्यायन्तेऽधुनास्फुटम् ॥ भक्ति रसायन २।२

५. राजसी तामसी शुद्ध सात्त्विकी मिश्रिता च सा ।
ईर्ष्याद्वेषजाद्या स्याद् भयजद्वेषजा परा ॥
हर्षजा शुद्धसत्त्वोत्था कामशोकादि जेतरा ।
सत्त्वजत्वे तु सर्वासां गुणान्तर कृताभिदा ॥ भक्ति रसायन २।४१, ४२

६. सा भक्तिः साधन भाव प्रेमाचेति त्रिधोदिता । ह० भ० र० १।२।१

७. कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा । ह० भ० र० १।२।१

८. वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनाभिधा । ह० भ० र० १।२।३

जहाँ भावुक की भक्ति की ओर शास्त्राज्ञा से ही प्रवृत्ति होती है, प्रेमाकर्षण से नहीं; उसे वैधी भक्ति कहते हैं ।[1] वैधी भक्ति के ६४ अंग होते हैं[2] जिनमें नवधा भक्ति के नव अंगों का भी समावेश हो जाता है ।[3] श्री कृष्ण के प्रति व्रजवासियों के हृदय में व्यक्त अनुराग को रागानुगा भक्ति कहते हैं ।[4] रागानुगा भक्ति २ प्रकार की होती है[5] :—

१—कामरूपा

२—सम्बन्ध रूपा

२—भाव भक्ति

नाना रुचियों से चित्त को कोमल बनाने वाले शुद्ध सत्त्वमय और प्रेमाभिन्न अनुराग को भावभक्ति कहते हैं ।[6] साधक के हृदय में इस भावभक्ति का उदय, साधन भक्ति का अनुसरण करने से या भगवान अथवा उनके भक्तों की कृपा होने पर होता है ।[7]

३—प्रेमा भक्ति

वैधी और रागानुगा भावभक्ति का अनुष्ठान करने पर या भगवान की महती-कृपा होने पर साधक के हृदय में प्रेमाभक्ति का उदय होता है ।[8] अन्तःकरण को सम्यक् रीति से कोमल बनाने वाले, भगवान के प्रति अतिशय ममत्व को स्थापित

---

१. यत्र रागानवाप्तत्वात् प्रवृत्तिरुपजायते ।
शासनेनैव शास्त्रस्य सा वैधी भक्तिरुच्यते ।। ह० भ० र० १।२।४

२. हरिभक्ति रसामृत सिन्धु १।२।२३–१।२।४४

३. अर्चनं परिचर्या च गीत-संकीर्तनं जपः ।
आरात्रिकोत्सवादेश्च श्रवणं तत्कृपेक्षणम् ।।
स्मृतिर्ध्यानं तथा दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।
श्रद्धाविशेषतः प्रीतिः श्रीमूर्तेरङ्घ्रिसेवनम् ।। ह० भ० र० पृष्ठ ४६-४८

४. विराजन्तीमभिव्यक्तं व्रजवासि जनादिषु ।
रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते ।। ह० भ० र० १।२ ६०

५. सा कामरूपा सम्बन्धरूपा चेति भवेद्द्विधा । ह० भ० र० १।२।६३

६. शुद्ध सत्त्व विशेषात्मा प्रेमसूर्यांशुसाम्यभाक् ।
रुचिभिश्चित्तमासृण्य कृदसौ भाव उच्यते ।। ह० भ० र० १।३।१

७. साधनाभिनिवेशेन कृष्णतद्भक्तयोस्तथा ।
प्रसादेनाति धन्यानां भावो द्वेधाभिजायते ।। ह० भ० र० १।३।४

८. भावोत्थोऽति प्रसादोत्थः श्री हरेरिति स द्विधा । हरिभक्तिरसामृतसिन्धु १।४।६

१—सात्विकी भक्ति :—जो भक्ति सर्वकर्मफल को भगवान के चरणों में अर्पित करने के उद्देश्य से की जाती है।[१]

२—राजसी भक्ति :—जो भक्ति ऐश्वर्य की कामना से की जाती है।[२]

३—तामसी भक्ति :—जो भक्ति दम्भ और क्रोध-भाव से की जाती है।[३]

श्री मधुसूदन सरस्वती के मत से चित्तद्रुति के कारणों में भेद होने के कारण भक्ति के निम्नांकित चार भेद होते हैं[४] :—

१—राजसी
२—तामसी
३—सात्विकी
४—मिश्रिता

राजसी भक्ति ईर्ष्याजन्य द्वेष से, तामसी भक्ति भयजन्य द्वेष से, शुद्ध सात्विकी भक्ति हर्षातिरेक से और मिश्रिता भक्ति काम और शोकादि से उत्पन्न होती है।[५]

श्री रूपगोस्वामी के मत से भक्ति तीन प्रकार की होती है[६]—

१—साधन भक्ति
२—भाव भक्ति
३—प्रेमा भक्ति

१—साधन भक्ति

इष्टदेव के प्रति उपाय-साध्य भाव को साधन भक्ति कहते हैं।[७] साधन भक्ति के दो उपभेद होते हैं[८]—

१—वैधी
२—रागानुगा

---

१. कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन्वा तदर्पणम् ।
यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ।। भागवत।३।२९।१०

२. विषयानभिसन्धाय यश ऐश्वर्यमेव वा ।
अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ।। भागवत।३।२९।९

३. अभिसंधाय यो हिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा ।
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः ।। भागवत।३।२९।८

४. चित्तद्रुतेः कारणानां भेदात् भक्तिस्तु भिद्यते ।
तान्युक्तानि तु संक्षेपाद् व्याख्यास्यन्तेऽधुनास्फुटम् ।। भक्ति रसायन २।२

५. राजसी तामसी शुद्ध सात्त्विकी मिश्रिता च सा ।
ईर्ष्याद्वेषभवाद्या स्याद् भयजद्वेषजा परा ।।
हर्षजा शुद्धसत्त्वोत्था कामशोकादि जेतरा ।
सत्त्वजत्वे तु सर्वासां गुणान्तर कृताभिदा ।। भक्ति रसायन २।४१, ४२

६. सा भक्तिः साधन भावः प्रेमा चेति त्रिधोदिता । ह० भ० र० १।२।१

७. कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा । ह० भ० र० १।२।१

८. वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनाभिधा । ह० भ० र० १।२।३

जहाँ भावुक की भक्ति की ओर शास्त्राज्ञा से ही प्रवृत्ति होती है, प्रेमाकर्षण से नहीं; उसे वैधी भक्ति कहते हैं।[१] वैधी भक्ति के ६४ अंग होते हैं[२] जिनमें नवधा भक्ति के नव अंगों का भी समावेश हो जाता है।[३] श्री कृष्ण के प्रति व्रजवासियों के हृदय में व्यक्त अनुराग को रागानुगा भक्ति कहते हैं।[४] रागानुगा भक्ति २ प्रकार की होती है[५] :—

१—कामरूपा

२—सम्बन्ध रूपा

२—भाव भक्ति

नाना रुचियों से चित्त को कोमल बनाने वाले शुद्ध सत्त्वमय और प्रेमाभिन्न अनुराग को भावभक्ति कहते हैं।[६] साधक के हृदय में इस भावभक्ति का उदय, साधन भक्ति का अनुसरण करने से या भगवान अथवा उनके भक्तों की कृपा होने पर होता है।[७]

३—प्रेमा भक्ति

वैधी और रागानुगा भावभक्ति का अनुष्ठान करने पर या भगवान की महती-कृपा होने पर साधक के हृदय में प्रेमाभक्ति का उदय होता है।[८] अन्तःकरण को सम्यक् रीति से कोमल बनाने वाले, भगवान के प्रति अतिशय ममत्व को स्थापित

---

१. यत्र रागानवाप्तत्वात् प्रवृत्तिरुपजायते ।
शासनेनैव शास्त्रस्य सा वैधी भक्तिरुच्यते ।। ह० भ० र० १।२।४

२. हरिभक्ति रसामृत सिन्धु १।२।२३—१।२।४४

३. अर्चनं परिचर्या च गीतं-संकीर्तनं जपः ।
आरात्रिकोत्सवादेश्च श्रवणं तत्कृपेक्षणम् ।।
स्मृतिर्ध्यानं तथा दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।
श्रद्धाविशेषतः प्रीतिः श्रीमूर्तेरङ्घ्रिसेवनम् ।। ह० भ० र० पृष्ठ ४६-४८

४. विराजन्तीमभिव्यक्तं व्रजवासि जनादिषु ।
रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते ।। ह० भ० र० १।२ ६०

५. सा कामरूपा सम्बन्धरूपा चेति भवेद्द्विधा । ह० भ० र० १।२।६३

६. शुद्ध सत्त्व विशेषात्मा प्रेमसूर्यांशुसाम्यभाक् ।
रुचिभिश्चित्तमासृण्य कृदसौ भाव उच्यते ।। ह० भ० र० १।३।१

७. साधनाभिनिवेशेन कृष्णतद्भक्तयोस्तथा ।
प्रसादेनाति धन्यानां भावो द्वेधाभिजायते ।। ह० भ० र० १।३।४

८. भावोत्थोऽति प्रसादोत्थः श्री हरेरिति स द्विधा । हरिभक्तिरसामृतसिन्धु १।४।३

करने वाले और आत्मा में पूर्वोक्त भाव को दृढ़ करने वाले भाव को प्रेमा भक्ति कहते हैं।[१] प्रेमाभक्ति के दो भेद होते हैं[२]—

(१) माहात्म्य ज्ञान युक्त प्रेमाभक्ति

(२) माधुर्य ज्ञान युक्त प्रेमाभक्ति

निम्बार्क के मत से भक्ति दो प्रकार की होती है[३]—

(१) साधन रूपा अपराभक्ति (२) उत्तमा पराभक्ति

भक्ति-संदर्भ में भक्ति के तीन प्रकार बतलाये गये हैं[४]—

(१) आरोपसिद्धा (२) संगसिद्धा (३) स्वरूपसिद्धा

आरोपसिद्धा भक्ति

भक्तित्व का अभाव होने पर भी भगवान् को अर्पण करने आदि जिन कर्मों से भक्ति-भावना की प्राप्ति होती है, उन कर्मों की समष्टि को आरोपसिद्धा भक्ति कहते हैं।

संगसिद्धा भक्ति

भक्ति के परिकर के रूप में जो कार्य किए जाते हैं, उनको संगसिद्धा भक्ति कहते हैं। ज्ञान और कर्म; भक्ति के संगी के रूप में व्यवहृत होते हैं, अतएव इनको संगसिद्धा भक्ति कहते हैं।

स्वरूपसिद्धा भक्ति

स्वरूपसिद्धा भक्ति वह है, जो स्वतः भक्ति रूप में प्रसिद्ध है। श्रवण, कीर्तन आदि अंगों वाली नवधा भक्ति स्वरूपसिद्धा भक्ति है।

आचार्य वल्लभ द्वारा प्रवर्तित पुष्टिमार्ग में भक्ति के निम्नांकित चार भेद माने गये हैं[५]—

(१) प्रवाहपुष्टभक्ति, (२) मर्यादापुष्टभक्ति, (३) पुष्टिपुष्टभक्ति, (४) शुद्धपुष्ट भक्ति।

---

१. सम्यङ्मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयांकितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते ॥ ह० भ० र० १।४।१

२. माहात्म्यज्ञान युक्तश्च केवलश्चेति स द्विधा ॥ ह० भ० र० १।४।४

३. कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते, यया भवेत् प्रेमविशेषलक्षणा।
भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः सा चोत्तमा साधन रूपिकापरा ॥
निम्बार्क—वेदान्त कामधेनु

४. भक्ति अंक (कल्याण ३२।१), पृष्ठ १७४

५. वैष्णव, शैव और धार्मिक मत—पृष्ठ ६१

भक्ति के भेद

आलम्बन[1] के आधार पर	गुण[2] के आधार पर	स्तर की दृष्टि से	भक्तों की दृष्टि से	रस[3] की दृष्टि से	जीवभेद[4] की दृष्टि से (वल्लभ के मत से)	निम्बार्क के मत से	उपासना[5] की दृष्टि से	रूप गोस्वामी[6] के मत से	वोपदेव[7] कृत मुक्ताफल के आधार पर	भक्ति-संदर्भ[8] के आधार पर	भक्ति-मीमांसा[9] के आधार पर
१. निर्गुण	१. सात्त्विकी	१ परा-भक्ति	१. आर्त्त की भक्ति	१. शान्त	१. पुष्टि पुष्ट भक्ति	१. साधन भक्ति या गौणीभक्ति	१. शीतला (चरण-कमलोन्मुख)	१. साधन भक्ति	१. विहिता	१. आरोप-सिद्धा	१. शुद्ध भक्ति-योग
२. सगुण	२. राजसी	२. अपरा-भक्ति	२. अर्थार्थी की भक्ति	२. दास्य	२. मर्यादा पुष्ट भक्ति	२. उत्तमा भक्ति या प्रेमाभक्ति	२. दुर्लभा (मुखकमलोन्मुख)	२. भाव भक्ति	२. निषिद्धा (अविहिता)	२. संग-सिद्धा	२. मिश्र भक्ति-योग
	३. तामसी		३. जिज्ञासु की भक्ति	३. सख्य	३. प्रवाह पुष्ट भक्ति			३. प्रेमा भक्ति		३. स्वरूप-सिद्धा	
	४. मिश्रिता		४. ज्ञानी की भक्ति	४. वात्सल्य	४. शुद्ध पुष्ट भक्ति						
				५. उज्ज्वल (मधुर)							

१ हिन्दी काव्य में भक्ति का स्वरूप--डॉ० नित्यानन्द शर्मा, पृष्ठ ३१-३५

(शेष अगले पृष्ठ पर देखें)

(पूर्व पृष्ठ का अवशिष्टांश)

२. भक्ति रसायन २।२

३. हरिभक्ति रसामृतसिन्धु २।५।६६, ६७

४. गोपांगनानां पुष्टिः, गोपीषु मर्यादा व्रजांगनासु प्रवाहः । बृहत्स्तोत्र सरित्सागरः भगवत्पीठिका, पृष्ठ १३७
वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत—डॉ० भण्डारकर, पृष्ठ ६१

५. भक्तिर्द्विधा पदाम्भोजवदनाम्बुज भेदतः ।
प्रथमा कीर्तिता भक्तिर्गतः श्रवणकीर्तनात् ।। १
तत्रैव मुख्यसम्बन्धः सुलभो नारदादिषु ।
द्वितीया दुर्लभा यस्मादधरामृतसेवनात् ।। २
तद् भावनारूपा विरहानुभवात्मिका ।
गोपसीमन्तिनीनां न सा दत्ता हरिणास्वतः ।। ३ भक्तिद्वैविध्यम् । श्लोक १, २, ३

६. हरिभक्तिरसामृतसिन्धु १।२।३

७. भक्तिचन्द्रिका, पृष्ठ १६ में उद्धृत

८. भक्ति-अंक (कल्याण ३२।१), पृष्ठ १७४

९. भक्ति योगो बहुविधः पुराणेषु । भक्ति-मीमांसा २।१।३
स द्विविधः शुद्धो मिश्रश्च । भक्ति मीमांसा २।१।४

नवधा भक्ति

भागवत में नवधा भक्ति के नव अंगों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि भगवान् का गुण-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन: यह नवधा भक्ति है।[1]

भागवत में प्रतिपादित इस नवधा भक्ति से भिन्न एक अन्य प्रकार की नवधा भक्ति का उल्लेख अध्यात्मरामायण में हुआ है। अध्यात्मरामायणकार के मत से भक्ति का प्रथम साधन सत्संग है तथा भगवान् के जन्म और कर्मों की कथा का कीर्तन करना द्वितीय साधन है। भगवान् के गुणों की चर्चा करना तृतीय और भगवद्-वाक्यों की व्याख्या करना चतुर्थ साधन है। अपने गुरुदेव की निष्कपट भाव से भगवद् बुद्धि से सेवा करना पंचम, भगवान् की पूजा में प्रेम होना षष्ठ और उनके मन्त्र की सांगोपासना सप्तम साधन है। भगवद् भक्तों को भगवान् से अधिक मानकर उनका आदर सत्कार करना और समस्त प्राणियों में भगवान् की भावना करना अष्टम तथा तत्त्व-विचार करना नवम् साधन है। जिस किसी में ये साधन होते हैं; वह स्त्री-पुरुष अथवा पशु पक्षी आदि कोई क्यों न हो; उसमें प्रेम-लक्षणाभक्ति का आविर्भाव हो ही जाता है।[2]

---

१. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥ भागवत ७।५।२३, २४

२. तस्माद् भामिनि संक्षेपाद्वक्ष्येऽहं भक्तिसाधनम्।
सतांसंगतिरेवात्र साधनं प्रथमं स्मृतम्॥
द्वितीयं मत्कथालापस्तृतीयं मद्गुणेरणम्।
व्याख्यातृत्वं मद्वचसां चतुर्थं साधनं भवेत्॥
आचार्योपासनं भद्रे मद्बुद्ध्याऽमायया सदा।
पंचमं पुण्यशीलत्वं यमादि नियमादि च॥
निष्ठा मत्पूजने नित्यं षष्ठं साधनमीरितम्।
मम मन्त्रोपासकत्वं सांगं सप्तममुच्यते॥
मद्भक्तेष्वधिका पूजा सर्वभूतेषु मन्मतिः।
बाह्यार्थेषु विरागित्वं शमादिसहितं तथा॥
अष्टमं नवमं तत्त्व विचारो मम भामिनि।
एवं नवविधा भक्तिः साधनं यस्य कस्य वा॥
स्त्रियो वा पुरुषस्यापि तिर्यग्योनिगतस्य वा।
भक्तिः संजायते प्रेमलक्षणा शुभ लक्षणे॥ अध्यात्म रामा०।अरण्यकांड १०।२२-२८

पराभक्ति की प्राप्ति साधन भक्ति से ही होती है।[1] नवधा भक्ति के श्रवण आदि किसी भी साधन का विशेष रूप से अनुष्ठान करने से वही साधन पराभक्ति की प्राप्ति में सहायक बन जाता है।[2]

उपर्युक्त दोनों प्रकार की नवधा भक्ति के अतिरिक्त ब्रह्मवैवर्त पुराण में एक तीसरे प्रकार की नवधा भक्ति का उल्लेख हुआ है।[3] इस नवधा भक्ति के अन्तर्गत १. स्मरण, २. वन्दन, ३. ध्यान, ४. अर्चन, ५. कीर्तन, ६. श्रवण, ७. भावना, ८. सेवा, ९. सर्व निवेदन, इन नव साधनों का वर्णन किया गया है। भागवतोक्त नवधा भक्ति के अंगों से ब्रह्मवैवर्त-पुराणोक्त नवधा भक्ति के अंगों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि स्मरण, वन्दन, अर्चन, कीर्तन, श्रवण, सेवा और आत्म निवेदन, ये सात अंग दोनों में समान हैं। किन्तु भागवत के दास्य और सख्य के स्थान पर ब्रह्मवैवर्त पुराण में भाव और ध्यान का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार भागवत और अध्यात्म रामायण की नवधा भक्ति की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि भागवत की नवधा भक्ति में साधक की सभी क्रियाओं का सम्बन्ध भगवान से स्थापित किया गया है, जब कि अध्यात्म रामायण की नवधा भक्ति में साधक का भगवान से सम्बन्ध स्थापित करने के साथ ही साधक की परिचर्या और चित्तवृत्तियों के परिष्कार करने की ओर भी ध्यान दिया गया है। डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र ने भागवतोक्त नवधा भक्ति के अंगों का क्रम-स्थापित करते हुए लिखा है कि श्रवण, कीर्तन और स्मरण-ये तीनों नाम-सम्बन्धी साधन हैं जो विशेष कर श्रद्धा और विश्वास की वृद्धि के सहायक हैं। पादसेवन, अर्चन, वन्दन, ये तीन रूप-सम्बन्धी साधन हैं; जो वैधी भक्ति के विशेष अंग हैं और दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन, ये तीन भाव-सम्बन्धी साधन हैं, जो रागात्मिका भक्ति से घनिष्ठता रखते हैं। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो ये साधन परस्पर सम्बद्ध भी जान पड़ेंगे और क्रमशः एक दूसरे के विकसित रूप प्रतीत होकर भक्ति रस की तह तक पहुँचने वाले नव सोपानों की तरह भी दिखायी पड़ेंगे।[4]

१. भक्त्या भजनोपसंहाराद्गौण्या परायैतद् हेतुत्वात्। शांडिल्य भक्तिसूत्र।५६
२. ईश्वर तुष्टेरेकोऽपि बली। शांडिल्य भक्तिसूत्र। ६३
३. स्मरणं वन्दनं ध्यानमर्चनं गुणकीर्तनम्।
श्रवणं भावनं सेवा कृष्णे सर्वनिवेदनम्॥
एतदेव वैष्णवानां नवधाभक्ति लक्षणम्।
जन्म मृत्यु जरा व्याधियम यातनखंडनम्॥
ब्रह्मवैवर्त पुराण। प्रकृति खण्ड। ६३।१९,२०
४. तुलसी दर्शन—डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र—पृष्ठ २५५

नवधा भक्ति के अंगों की व्याख्या करते हुए श्री रूपगोस्वामी ने कहा है कि भगवान् के नाम, चरित्र और गुणों को सुनना श्रवण भक्ति है[१] तथा उनके नाम, लीला और गुणों को उच्च स्वर में कथन करना कीर्तन भक्ति है ।[२] भगवान् का मन के साथ येन-केन प्रकारेण सम्बन्ध स्थापित करना ही स्मरण भक्ति है ।[३] ईश्वर के विग्रह की चरण-सेवा, पाद-सेवन तथा पूजा करना, अर्चन और स्तोत्रों द्वारा भगवान् की स्तुति करना वन्दन भक्ति है । अपने सभी कर्मों को ईश्वर के प्रति अर्पण करना दास्य भक्ति है ।[४] भगवान् में अटल विश्वास होना और उनके साथ मैत्रीभाव स्थापित होना सख्य है ।[५] प्रभु की सेवा में अपनी आत्मा को समर्पित कर देना आत्मनिवेदन है । आत्मा के देह और देही दोनों अर्थ बतलाए गए हैं । इस प्रकार आत्मनिवेदन के अन्तर्गत देह और देही (आत्मा) दोनों का समर्पण समझा जाता है ।[६] हरिभक्ति विलास नामक ग्रन्थ में नवधा भक्ति के स्थान पर अष्टधा भक्ति का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि भगवद्भक्तों के प्रति स्नेह और पूज्यभाव, भगवान् की श्रद्धा पूर्वक पूजा, उनकी कथा के श्रवण में अनुराग, प्रभु-विग्रह के सामने नृत्यगीतादि, भगवन्नाम का नित्य स्मरण, नाम पर आश्रित रहकर जीवन धारण और भगवान् के प्रति दम्भादि का त्याग करने से म्लेच्छवत् नीच और पतित व्यक्ति का भी परम कल्याण होता है ।[७]

---

१. श्रवणं नामचरितगुणादीनां श्रुतिर्भवेत् । ह० भ० र० १।२।३२
२. नाम लीला गुणादीनामुच्चैर्भाषा तु कीर्तनम् । ह० भ० र० १।२।२९
३. यथा कथं चिन्मनसा सम्बन्धः स्मृतिरुच्यते । ह० भ० र० १।२।३२
४. दास्यं कर्मार्पणं तस्य कैंकर्यमपि सर्वथा । ह० भ० र० १।२।३३
५. विश्वासो मित्रवृत्तिश्च सख्यं द्विविधमीरितम् । ह० भ० र० १।२।३६
६. अर्थो द्विधात्मशब्दस्य पंडितैरुपपाद्यते । ह० भ० र० १।२।३८
   देहे ह्यतास्पदं केचिद्देहः केचिन्ममत्वभाक् । ह० भ० र० १।२।३६
७. देवतायाञ्च मंत्रे च तथा मंत्रप्रदे गुरौ ।
   भक्तिरष्टविधा यस्य कृष्ण प्रसीदति ॥
   तद्भक्ति जन वात्सल्यं पूजायाञ्चानुमोदनम् ।
   सुमना अर्चयेन्नित्यं तदर्थेदम्भवर्जनम् ॥
   तत्कथा श्रवणे रागस्तदर्थे चांगविक्रिया ।
   तदनुस्मरणं नित्यं यस्तन्नाम्नोपजीवति ॥
   भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्तते ।
   स मुनिः सत्यवादी च कीर्तिमान भवेन्नरः ॥
   हरिभक्तिविलास ११।३७२

तुलसी-साहित्य में नवधा भक्ति

गोस्वामी जी ने रामचरितमानस के अरण्यकाण्ड में नवधा भक्ति का दो बार उल्लेख किया है। पहले प्रसंग में भागवत की नवधा भक्ति का उल्लेख हुआ है और दूसरे प्रसंग में अध्यात्म रामायण में प्रतिपादित नवधा भक्ति का उल्लेख किया गया है। हम यहाँ दोनों प्रसंगों में विवेचित नवधा भक्ति का अध्ययन करेंगे।

श्रीमद्भागवत पर आधारित नवधा भक्ति

रामचरितमानस के निम्नांकित प्रसंग में गोस्वामी जी ने साधन भक्ति के श्रवणादिक नव अंगों का उल्लेख किया है। भगवान् श्री राम लक्षमण को भक्ति के स्वरूप का ज्ञान कराते हुए कहते हैं :—

भगति कि साधन कहउँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी ।।
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती ।।
एहि कर फल पुनि विषय विरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा ।।
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं ।।
संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा ।।
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ।।
मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा ।।
काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरन्तर बस मैं ताकें ।।

बचन कर्म मन मोरि गति, भजनु करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ, करउँ सदा विश्राम ।।

रामचरितमानस)अरण्यकांड।१६।३ से १६ तक

अर्थात् वेदज्ञ विद्वानों (वेदपाठी भवेद् विप्रः) की सेवा करने से अपने वर्णधर्म का ज्ञान होता है, वेद प्रतिपादित ऋत तत्व का परिज्ञान होता है; जिसके फलस्वरूप सांसारिक विषयों से मन उपरत हो जाता है और भगवद्धर्मों में अभिरुचि उत्पन्न हो जाती है। इसके पश्चात् साधक के हृदय में भागवतोक्त नवधा भक्ति के साधनों-श्रवण, कीर्तन आदि-की सुदृढ़ स्थिति हो जाती है।

इस प्रसंग में श्रवणादिक नवधा भक्ति के उल्लेख के साथ ही साधन भक्ति के निम्नांकित नव अन्य अंगों का भी प्रतिपादन किया गया है, :—

१--प्रभु की लीला के प्रति प्रेम
२--सन्त-पद प्रे[illegible]

३—मन, वाणी और कर्म से प्रभु की आराधना

४—ईश्वर को गुरु, पिता, माता, बन्धु और स्वामी मानना

५—ईश्वर की सेवा

६—कीर्तन

७—दंभमदकामादि से रहित होना

८—प्रभु पर अवलम्बित होना

९—निष्काम भाव से प्रभु का चिन्तन करना

अध्यात्म रामायण पर आधारित नवधा भक्ति

गोस्वामी जी ने अध्यात्म रामायण से भाव ग्रहण कर निम्नांकित नवधा भक्ति का उल्लेख किया है ।[१] भगवान श्री राम शबरी से भक्ति का रहस्य बतलाते हुए कहते हैं :—

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं । सावधान सुनु धरु मन माहीं ।।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।।

गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान ।
चौथि भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान ।।

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा । पंचम भजन सो बेद प्रकासा ।।
छठ दम सील बिरति बहु करमा । निरत निरंतर सज्जन धरमा ।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा । मोतें संत अधिक करि लेखा ।।
आठवँ जथा लाभ संतोषा । सपनेहुँ नहिं देखइ पर दोषा ।।
नवम सरल सब सन छल हीना । मम भरोस हियँ हरष न दीना ।।
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई । नारि पुरुष सचराचर कोई ।।
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें । सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें ।।

रामचरितमानस।अरण्यकांड ३५।४ से ३६।४ तक

नवधा भक्ति के इस प्रसंग में अध्यात्म रामायण का प्रभाव है । नवधा भक्ति के सात अंग तो क्रमभेद से अध्यात्म रामायण और रामचरितमानस में प्रायः समान हैं । शेष दो अंग भावार्थ की दृष्टि से एक हैं । निम्नांकित तालिका से यह बात स्पष्ट हो जाती है[२] :—

---

१. तुलसी—दर्शन—डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र—पृष्ठ २५६

२. मानस पीयूष—अरण्यकाण्ड । पृष्ठ ३७१

मानस की नवधा भक्ति	अध्यात्म रामायण का नवधा भक्ति
१–प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा।	१–सतां संगतिरेवात्र साधनं प्रथमं स्मृतम्।
२–दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।	२–द्वितीयं मत्कथालापः।
३–गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।	३–आचार्योपासन भद्रेमद्बुद्धयामायया सदा।
४–चौथि भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान।	४–मद् गुणेरणम्।
५–मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥	५–मम मन्त्रोपासकत्वं।
६–छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरन्तर सज्जन धरमा॥	६–पुण्य शीलत्वं यमादि नियमादि च। निष्ठा मत्पूजने नित्यं षष्ठं साधनमीरितम्।
७–सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥	७–मद्भक्तेष्वधिका पूजा सर्वभूतेषु मन्मतिः।
८–आठवँ जथा लाभ सन्तोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥	८–बाह्यार्थेषु विरागित्वं शमादि सहितं तथा।
९–नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥	९–नवमं तत्त्वविचारो मम।

नवधा भक्ति के पूर्व विवेचित दोनों प्रसंगों में साम्य है, यह तथ्य निम्नांकित तुलना से स्पष्ट हो जाता है[१] :—

शबरी के प्रति प्रतिपादित नवधाभक्ति	लक्ष्मण के प्रति उपदिष्ट नवधाभक्ति
१–प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।	१–संत चरन पंकज अति प्रेमा।
२–दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।	२–मम लीला रति अति मन माहीं।
३–गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।	३–गुरु (पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै) दृढ़ सेवा॥
४–चौथि भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान।	४–मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
५–मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥	५–मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा।

१. मानस पीयूष—अरण्यकांड। पृष्ठ १६४
तुलसी-दर्शन—डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र—पृष्ठ २५८-२५९

६–छठ दम सील विरति बहु करमा । निरत निरंतर सज्जन धरमा ॥	६–काम आदि मद दंभ न जाके ।
७–सातवँ सम मोहि मय जग देखा । मोतें संत अधिक करि लेखा ॥	७–गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा । सब मोहि कहँ जानै ………। संत चरन पंकज अति प्रेमा ।
८–आठवँ जथा लाभ संतोषा । सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ॥	८–भजनु करहिं निःकाम ।
९–नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस हियँ हरष न दीना ॥	९–बचन कर्म मन मोरि गति………।

रामचरितमानस में श्रवणादिक नवधा भक्ति के अंगों का प्रतिपादन

१ **श्रवण** :—जो व्यक्ति अपने कानों से भगवान की मधुर कथा का आस्वादन नहीं करते, उनके कान सर्प के बिल की भाँति त्याज्य हैं :—

जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना । श्रवन रन्ध्र अहि भवन समाना ॥

रा० च० मा० १।११३।२

इसीलिए जीवन्मुक्त विरक्त महात्मा भी प्रभु के गुणों को श्रवण करते हैं—

जीवनमुक्त महामुनि जेऊ । हरिगुन सुनहिं निरन्तर तेऊ ॥

रामचरितमानस ७।५३।१

२. **कीर्तन** :—कलियुग में प्रभु के गुणों का गान करने से अनायास मुक्ति मिल जाती है :—

कलियुग केवल हरिगुन गाहा । गावत नर पावहिं भव थाहा ॥

रामचरितमानस ७।१०३।२

कलियुग में योग, यज्ञ और ज्ञान प्रभावहीन हैं । श्री राम का गुणगान ही एक मात्र कल्याण का आधार है :—

कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना । एक अधार राम गुन गाना ॥

रामचरितमानस ७।१०३।३

३. **स्मरण** :—भगवान् के नाम का स्मरण करने से संसार-सागर से अनायास उद्धार हो जाता है :—

सादर सुमिरन जे नर करहीं । भव बारिधि गोपद इव तरहीं ॥

रामचरितमानस १।११९।२

अत्यन्त पापी व्यक्ति भी भगवान् के नाम का स्मरण कर भव-सागर से तर जाते हैं :—

पाइ जाकर नाम सुमिरहीं । अति अपार भवसागर तरहीं ।।

रामचरितमानस ४।२९।२

इसलिए हमें सदैव भगवान् राम के गुणों का गान करते रहना चाहिए और निरन्तर उनकी कथाओं का स्मरण करना चाहिए :—

रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि । संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि ।।

रामचरितमानस ७।१३०।३

४. पादसेवन :—भगवान् राम के चरणों में स्नेह होना ही साधन है और वही साध्य है :—

साधन सिद्धि राम पग नेहू । मोहि लखि परत भरत मत एहू ।।

रामचरितमानस २।२८९।४

भगवान् राम के चरण कमलों में अनुराग रखने वाले अंगद और हनुमान परम भाग्यवान् कहे गये हैं—

बड़भागी अंगद हनुमाना । चरन कमल चाँपत बिधि नाना ।।

रामचरितमानस ६।११।४

५. अर्चन—भक्तों की दिनचर्या का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि वे प्रतिदिन प्रभु की पूजा करते हैं—

कर नित करहिं रामपद पूजा । राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा ।।

रामचरितमानस २।१२९।२

६. वन्दन—कवि ने लिखा है कि जो शिर भगवान् (और गुरु) के चरणों में प्रणत नहीं होते हैं, वे कड़ुई लौकी की तुम्बी के समान त्याज्य है—

ते सिर कटु तुम्बरि समतूला । जे न नमत हरि गुर पद मूला ।।

रामचरितमानस १।११३।२

कवि ने सम्पूर्ण सिद्धियों के दाता भगवान् श्रीराम के बालरूप की वन्दना की है—

बंदउँ बालरूप सोइ रामू । सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू ।।

रामचरितमानस १।११२।२

७. दास्य—कवि का मत है कि प्रभु के प्रति सेव्य भाव होना चाहिये । इस प्रकार दास्य भाव की उपासना को ही कवि ने उत्तम माना है—

सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि ।

भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धान्त बिचारि ।। रामचरितमानस ७।११९

८. सख्य—भगवान् राम ने वशिष्ठ मुनि से सुग्रीव और विभीषण आदि का परिचय देते हुए उन्हें अपना सखा बतलाया है—

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे । भए समर सागर कहँ बेरे ।।

रामचरितमानस ७।८।४

९. आत्मनिवेदन—भक्त भगवान् के चरणों में अपना सब कुछ समर्पित कर देता है और केवल उनकी कृपा की आकांक्षा करता है :—

तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं । राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ।।

रामचरितमानस २।१३०।३

विनयपत्रिका में श्रवणादिक नवधा भक्ति के अंगों का प्रतिपादन

१. श्रवण :—कवि की भगवान् राम के प्रति अनन्य निष्ठा थी । वे अपनी वाणी से केवल श्रीराम के ही गुणों का गान करना चाहते थे और कर्णों से केवल भगवान् श्रीराम की ही कथा सुनने की कामना उनके मन में अवशिष्ट थी :—

श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं । विनयपत्रिका १०४।३

२. कीर्तन :—गोस्वामी जी अपनी जिह्वा की भर्त्सना करते हुए कहते हैं कि तू अहर्निश भगवान् राम के गुणों का गान क्यों नहीं करती ?

काहे न रसना रामहि गावहि ? विनयपत्रिका २३७।१

३. स्मरण :—गोस्वामी जी अपने मन को भगवान् श्रीराम का सतत स्मरण करने के लिए प्रेरित करते हैं :—

सुमिरु सनेह सहित सीतापति । विनयपत्रिका १२८।१

४. पादसेवन :—कवि ने भगवान श्रीराम के चरण कमलों में अंकित शुभ-चिह्नों का श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है—

मृदुल चरन शुभ चिह्न, पदज, नख अति अभूत उपमाई ।
अरुन नील पाथोज प्रसव जनु, मनि जुत दल समुदाई ।।

विनयपत्रिका ६२।३

भगवान् के चरण कमलों में ब्रह्मा, शिव और सनकादिक मुनि रूपी भ्रमर निवास किया करते हैं—

यस्यांघ्रिपाथोज अज-शंभु-सनकादि-शुक-शेष-मुनिवृन्द-अलि निलयकारी ।

विनयपत्रिका ६१।१

५. अर्चन :—गोस्वामी जी भगवान् राम की आरती करते हुए कहते हैं कि उनकी आरती सभी प्रकार की पीड़ाओं को दूर कर देती है, दुःख और पापों को जला डालती है और कामना को मूलतः नष्ट कर देती है—

हरति सब आरती आरती राम की ।
दहन दुःख-दोष, निरमूलिनी काम की ।। विनयपत्रिका ४८।१

६. वन्दन :—कवि ने सांसारिक भेद-ज्ञान से मुक्ति पाने के उद्देश्य से भगवान राम की वन्दना की है—

बंदौं रघुपति करुना निधान । जाते छूटै भव-भेद ग्यान ।। विनयपत्रिका ६४।१

७. दास्य :—गोस्वामी जी की उपासना दास्य भाव की थी। इसलिए उन्होंने भगवान् राम को दयालु, दानी, नाथ, ब्रह्म और स्वामी बतलाया है तथा अपने को दीन, भिक्षुक, अनाथ, जीव और सेवक कहा है :—

तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंज हारी ।।
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मो सो ।
मो समान आरत नहिं आरति हर तोसो ।।
ब्रह्म तू हौं जीव तू है ठाकुर हौं चेरो ।
तात-मातु, गुरु सखा तू सब बिधि हितु मेरो ।।
तोहि मोहि नाते अनेक मानियै जो भावै ।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु ! चरन-सरन पावै ।। विनयपत्रिका ७६

उपर्युक्त पद में कवि ने ब्रह्म और जीव के अनेक सम्बन्धों का उल्लेख करते हुए, उनके चरणों में शरण पाने की प्रार्थना की है।

८. सख्य :—निम्नांकित पंक्तियों में कवि ने भगवान् से उनके अंगों के प्रति सत्संग प्रदान करने की प्रार्थना की है :—

देहि सत्संग निज अंग श्री रंग ! भवभंग कारण शरण शोकहारी ।
विनयपत्रिका ५७।१

९. आत्म-निवेदन :—कवि ने श्रीराम के चरणों में पूर्ण रूप से आत्म निवेदन कर दिया है और उनकी प्रपन्नता स्वीकार कर ली है। अतएव वह श्रीराम के अतिरिक्त किसी अन्य देवता से प्रार्थना नहीं करना चाहता :—

तुम तजि हौं कासों कहौं और को हितू मेरे ?
दीनबन्धु ! सेवक, सखा, आरत, अनाथ पर सहज छोह केहि केरे ।।
विनयपत्रिका २७३।१

रामचरितमानस में प्रेमाभक्ति

गोस्वामी जी ने नवधा भक्ति के रूप में जहाँ साधनभक्ति की व्याख्या की है, वहाँ उन्होंने प्रेमाभक्ति के रूप में साध्याभक्ति का भी प्रतिपादन किया है। साधक प्रेमाभक्ति की स्थिति में प्रभु प्रेम का अनुभव करते हुए अपने शरीर की सुधि भूल जाता है। प्रभु का स्मरण कर कभी वह नाचने लगता है, तो कभी रोने लगता है, कवि ने मानस में सुतीक्ष्ण मुनि का एक प्रेमी भक्त के रूप में उल्लेख किया है—

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी॥
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥
अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई॥
रामचरितमानस। अरण्यकाण्ड १०।५-७

भक्ति की साध्यता

भक्ति शास्त्र में कहा गया है कि भक्ति अंगी है और ज्ञान तथा कर्म आदि उसके अंग हैं।[१] ज्ञान, योग और कर्म; भक्ति की अपेक्षा रखते हैं; इसलिए इनकी अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध हो जाती है।[२] नारद के मत से प्रेमाभक्ति : कर्म, ज्ञान और योग से श्रेष्ठ होती है।[३] ज्ञान प्रेमाभक्ति का साधन है।[४] जिस प्रकार भोजन और राजा के स्वरूप का ज्ञान हो जाने से ही क्रमशः क्षुधा-निवृत्ति और राजा की कृपा की प्राप्ति नहीं हो जाती है; उसके लिए पृथक् रूप से प्रयत्न करने पड़ते हैं; उसी प्रकार ज्ञान से ईश्वर के स्वरूप का बोध तो हो जाता है, किन्तु उनकी कृपा नहीं प्राप्त होती है।[५] प्रभु की कृपा की प्राप्ति भक्ति से हो सम्भव है। इसीलिए मुमुक्षु भी भक्ति का ही आश्रय ग्रहण करते हैं।[६] इस प्रकार भक्ति कर्म, योग और ज्ञान की अपेक्षा श्रेष्ठ तथा साध्य सिद्ध होती है।

रामचरितमानस में भक्ति की साध्यता का प्रतिपादन

गोस्वामी तुलसीदास ने भक्ति को साध्य और ज्ञान तथा कर्म को भक्ति का साधन कहा है—

बिरति चर्म असि ग्यान मद, लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइय सो हरि भगति, देखु खगेस बिचारि॥
रामचरितमानस। उत्तरकाण्ड। १२०

भक्ति स्वतंत्र है और ज्ञान तथा विज्ञान उसके अधीन हैं—

---

१. सा मुख्येतरापेक्षितत्वात्। शांडिल्य भक्तिसूत्र।१०
२. तदेव कर्मज्ञानियोगिभ्य आधिक्य शब्दात्। शां० भ० सू०। २२
३. सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽधिकतरा। नारद भक्तिसूत्र। २५
४. तस्या ज्ञानमेव साधनमित्येके। नारद भक्तिसूत्र २८
५. राजगृह भोजनादिषु तथैव दृष्टत्वात्।
न तेन राजपरितोषः क्षुधाशान्तिर्वा॥ ना० भ० सू० ३१, ३२
६. तस्मात्सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः। ना० भ० सू०। ३३

६. वन्दन :—कवि ने सांसारिक भेद-ज्ञान से मुक्ति पाने के उद्देश्य से भगवान राम की वन्दना की है —

बंदौं रघुपति करुना निधान । जाते छूटै भव-भेद ग्यान ।। विनयपत्रिका ६४।१

७. दास्य :—गोस्वामी जी की उपासना दास्य भाव की थी । इसीलिए उन्होंने भगवान् राम को दयालु, दानी, नाथ, ब्रह्म और स्वामी बतलाया है तथा अपने को दीन, भिक्षुक, अनाथ, जीव और सेवक कहा है :—

तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंज हारी ।।
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मो सो ।
मो समान आरत नहि आरति हर तोसो ।।
ब्रह्म तू हौं जीव तू है ठाकुर हौं चेरो ।
तात-मातु, गुरु सखा तू सब विधि हितु मेरो ।।
तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै ।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु ! चरन-सरन पावै ।। विनयपत्रिका ७६

उपर्युक्त पद में कवि ने ब्रह्म और जीव के अनेक सम्बन्धों का उल्लेख करते हुए उनके चरणों में शरण पाने की प्रार्थना की है ।

८. सख्य :—निम्नांकित पंक्तियों में कवि ने भगवान् से उनके अंगों के प्रति सत्संग प्रदान करने की प्रार्थना की है :—

देहि सत्संग निज अंग श्री रंग ! भवभंग कारण शरण शोकहारी ।

विनयपत्रिका ५७।१

९. आत्म-निवेदन :—कवि ने श्रीराम के चरणों में पूर्ण रूप से आत्म निवेदन कर दिया है और उनकी प्रपन्नता स्वीकार कर ली है । अतएव वह श्रीराम के अतिरिक्त किसी अन्य देवता से प्रार्थना नहीं करना चाहता :—

तुम तजि हौं कासों कहौं और को हितू मेरे ?
दीनबन्धु ! सेवक, सखा, आरत, अनाथ पर सहज छोह केहि केरे ।।

विनयपत्रिका २७३।१

रामचरितमानस में प्रेमाभक्ति

गोस्वामी जी ने नवधा भक्ति के रूप में जहाँ साधनभक्ति की व्याख्या की है, वहीं उन्होंने प्रेमाभक्ति के रूप में साध्यभक्ति का भी प्रतिपादन किया है । साधक प्रेमाभक्ति की स्थिति में प्रभु प्रेम का अनुभव करते हुए अपने शरीर की सुधि भूल जाता है । प्रभु का स्मरण कर कभी वह नाचने लगता है, तो कभी रोने लगता है, कवि ने मानस में सुतीक्ष्ण मुनि का एक प्रेमी भक्त के रूप में उल्लेख किया है —

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी।।
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा।।
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई।।
अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई।।

रामचरितमानस। अरण्यकाण्ड १०।५-७

भक्ति की साध्यता

भक्ति शास्त्र में कहा गया है कि भक्ति अंगी है और ज्ञान तथा कर्म आदि उसके अंग हैं।[१] ज्ञान, योग और कर्म; भक्ति की अपेक्षा रखते हैं; इसलिए इनकी अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध हो जाती है।[२] नारद के मत से प्रेमाभक्ति : कर्म, ज्ञान और योग से श्रेष्ठ होती है।[३] ज्ञान प्रेमाभक्ति का साधन है।[४] जिस प्रकार भोजन और राजा के स्वरूप का ज्ञान हो जाने से ही क्रमशः क्षुधा-निवृत्ति और राजा की कृपा की प्राप्ति नहीं हो जाती है; उसके लिए पृथक् रूप से प्रयत्न करने पड़ते हैं; उसी प्रकार ज्ञान से ईश्वर के स्वरूप का बोध तो हो जाता है, किन्तु उनकी कृपा नहीं प्राप्त होती है।[५] प्रभु की कृपा की प्राप्ति भक्ति से हो सम्भव है। इसीलिए मुमुक्षु भी भक्ति का ही आश्रय ग्रहण करते हैं।[६] इस प्रकार भक्ति कर्म, योग और ज्ञान की अपेक्षा श्रेष्ठ तथा साध्य सिद्ध होती है।

रामचरितमानस में भक्ति की साध्यता का प्रतिपादन

गोस्वामी तुलसीदास ने भक्ति को साध्य और ज्ञान तथा कर्म को भक्ति का साधन कहा है—

बिरति चर्म असि ग्यान मद, लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइय सो हरि भगति, देखु खगेस बिचारि।।

रामचरितमानस। उत्तरकाण्ड। १२०

भक्ति स्वतंत्र है और ज्ञान तथा विज्ञान उसके अधीन हैं—

---

१. सा मुख्येतरापेक्षितुतत्वात्। शांडिल्य भक्तिसूत्र।१०
२. तदेव कर्मिज्ञानियोगिभ्य आधिक्य शब्दात्। शां० भ० सू०। २२
३. सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽधिकतरा। नारद भक्तिसूत्र। २५
४. तस्या ज्ञानमेव साधनमित्येके। नारद भक्तिसूत्र २८
५. राजगृह भोजनादिषु तथैव दृष्टत्वात्।
न तेन राजपरितोषः क्षुधाशान्तिर्वा।। ना० भ० सू० ३१, ३२
६. तस्मात्सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः। ना० भ० सू०। ३३

सो सुतंत्र अवलम्ब न आना । तेहि आधीन ग्यान बिग्याना ।।

रामचरितमानस । अरण्यकाण्ड । १६।२

साधन भक्ति से भगवान् के प्रति श्रद्धा और अनुराग की भावना उत्पन्न होती है। अनुराग होने पर ज्ञान द्वारा भगवान् के स्वरूप का सम्यक् ज्ञान हो जाता है; इसके पश्चात् भगवान् को प्राप्त करने की उत्कट लालसा उत्पन्न होती है। इसी को प्रेमाभक्ति कहते हैं और वह ज्ञान से श्रेष्ठ कही जाती है। इस प्रकार साधन भक्ति से ज्ञान और ज्ञान से प्रेमाभक्ति का जन्म होता है।[1]

ज्ञान और भक्ति

गोस्वामी जी ने भक्ति को ज्ञान की अपेक्षा निम्नांकित तथ्यों के आधार पर श्रेष्ठ कहा है—

१—ज्ञान मोक्ष का साधन अवश्य है, किन्तु इसमें पतन की सम्भावना बनी रहती है। भक्ति का आधार ग्रहण करने पर जीव की अधोगति कभी नहीं होती।[2]

२—ज्ञान-मार्ग में क्लिष्टता है और अनेक विघ्न हैं।[3]

३—भक्ति स्वतन्त्र है और ज्ञान-विज्ञान उसके अधीन हैं।[4]

१. मरमी सज्जन सुमति कुदारी । ग्यान बिराग नयन उरगारी ।।
भाव सहित खोजइ जो प्रानी । भाव भगति मनि सब सुख खानी ।।

रामचरितमानस ७।१२०।८

२. जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी ।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी ।।
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे ।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे ।।

रामचरितमानस । उत्तरकाण्ड । १४।३

३. ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका । साधन कठिन न मन कहुँ टेका ।।

रामचरितमानस । उत्तरकाण्ड ।४५।३

कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन बिबेक ।
होइ घुनाच्छर न्याय जौ पुनि प्रत्यूह अनेक ।। मानस ७।११८
ग्यान पंथ कृपान कै धारा । परत खगेस होइ नहिं बारा ।। मानस ७।११९।१

४. भगति सुतंत्र सकल सुख खानी । रा० च० मा०।उत्तर०।४५।३
सो सुतंत्र अवलम्ब न आना । तेहि आधीन ग्यान बिग्याना ।।

रा० च० मा०।अरण्य०।१६।२

४—ज्ञान वैराग्य आदि साधन हैं और भक्ति उन साधनों से प्राप्त होने वाला फल है।[1]

५—ज्ञान पुरुष वर्ग में है और भक्ति स्त्री वर्ग में है। माया ज्ञानियों को अपने प्रभाव में कर लेती है, किन्तु वह भक्ति से डरती है। इसीलिए वह भक्तों का अहित नहीं कर पाती।[2]

६—जिस प्रकार थल के बिना जल नहीं रह सकता; उसी प्रकार ज्ञान से प्राप्त मोक्ष भक्ति के बिना नहीं रह सकता।[3]

७—ज्ञानी और भक्त, भगवान् के क्रमशः तरुण और शिशु पुत्र के समान होते हैं। जिस प्रकार माता तरुण पुत्र की अपेक्षा शिशु पुत्र की विशेष चिन्ता करती है, उसी प्रकार भगवान् भी अपने भक्तों की विशेष चिन्ता रखते हैं और काम, क्रोध, आदि नाना विपत्तियों से उनकी रक्षा करते हैं।[4]

---

१. ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥

× × ×

तव पदपंकज प्रीति निरन्तर। सब साधन कर यह फल सुन्दर॥

रामचरितमानस। उत्तर०। ४६।१-२

२. ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरि जाना॥

रा० च० मा० ११५।२

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि बर्ग जानै सब कोऊ॥
पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥
भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥
राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी॥
तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई॥

रामचरितमानस। ७।११६।२-८

3. जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करइ उपाई॥
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकै हरि भगति बिहाई॥

रामचरितमानस ७।११६।३

४. सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥
गह-सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरगाई॥
प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिल बाता॥

(शेष अगले पृष्ठ पर देखें)

८—ज्ञान में किसी प्रकार का मान नहीं रह जाता[1], किन्तु भक्ति में जीव के हृदय में यह अभिमान सदैव बना रहता है कि मैं सेवक हूँ और प्रभु मेरे स्वामी हैं ।[2]

भक्ति-मणि :—गोस्वामी जी ने ज्ञान को दीपक कहा है[3] और भक्ति को चिन्तामणि ।[4] यह भक्ति-रूपी चिन्तामणि जिसके पास रहती है उसको किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होता है । इस मणि के दिव्य प्रकाश से अविद्या-जनित अन्धकार नष्ट हो जाता है :—

राम भगति चिंतामनि सुन्दर । बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर ॥
परम प्रकास रूप दिन राती । नहिं कछु चहिअ दिया घृत बाती ॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा । लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ॥
प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई । हारहिं सकल सलभ समुदाई ॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं । बसइ भगति जाके उर माहीं ॥
गरल सुधा सम अरि हित होई । तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ॥

× × ×

राम भगति मनि उर बस जाकें । दुःख लवलेस न सपनेहुँ ताकें ॥

रामचरितमानस ७।१२०।१-५

इस भक्ति रूपी चिन्तामणि की प्राप्ति वेद पुराण रूपी पर्वतों के अन्तःस्थल में स्थित रामकथा रूपी खान से होती है । संत रूपी कुशल खनन कर्ता, ज्ञान वैराग्य

(पूर्व पृष्ठ का अवशिष्टांश)

मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी । बालक सुत सम दास अमानी ॥
जनहि मोर बल निज बल ताही । दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही ॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं । पाएहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं ॥

रामचरितमानस । अरण्यकाण्ड । ४३।२-५

१. ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं । मानस । अरण्य० १५।४
२. अस अभिमान जाइ जनि भोरें । मैं सेवक रघुपति पति मोरें ॥

रा० च० मा० । अरण्यकाण्ड । ११।१२

३. एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यान मय ।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब ॥ रा० च० मा० ७।११७
४. कहेउँ ग्यान सिद्धान्त बुझाई । सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई ॥

रामचरितमानस ७।१२०।१

रूपी नेत्रों से स्थलों की पहचान कर सुबुद्धि रूपी कुदारी से खोदकर इस भक्ति-मणि को हस्तगत करते हैं।[१]

तुलसी प्रतिपादित भक्ति का विशेषतायें

गोस्वामी जी ने भक्ति की निम्नांकित विशेषताओं का उल्लेख किया है—

१—भक्ति ज्ञान और वैराग्य से युक्त होती है—

ब्रह्म निरूपन धरम बिधि, बरनहिं तत्व बिभाग।
कहहिं भगति भगवन्त कै, संजुत ग्यान बिराग ।। रा० च० मा० १।४४

श्रुति समत हरि भगति पथ, संजुत बिरति बिबेक। मानस ७।१००

२—भगवान् की भगति सरल मन से प्राप्त होती है—

सूधे मन सूधे बचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल बिधि, रघुबर प्रेम प्रसूति ।। दोहावली १५२

३—भक्ति सम्पूर्ण साधनों का फल है—

सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहू पाई ।।
रा० च० मा० ७।१२०।१६

जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी ।।
रा० च० मा० ७।१२६।४-७

भक्ति के व्यावहारिक पक्ष का उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है कि भक्त भगवान् राम से प्रेम करता है और आसक्ति तथा क्रोध का परित्याग कर सबके साथ उत्तम व्यवहार करता है :—

प्रीति राम सों नीति पथ, चलिय राग रिस जीति।
तुलसी संतन के मते, इहै भगति की रीति ।। दो०८६

४—भक्ति से भगवान् शीघ्र द्रवित हो जाते हैं :—

जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई ।।

× × ×

मन क्रम बचन छाँड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई ।।

५—जीव जब तक भगवान् राम का भजन नहीं करता, तब तक न तो उसका कल्याण होता है और न वह पूर्ण शान्ति ही पाता है। रामचन्द्र का भजन किये बिना जीव क्लेश से मुक्त नहीं होता—

---

१. पावन पर्वत बेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना ।।
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान बिराग नयन उरगारी ।।
भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी ।।
रामचरितमानस ७।१२०।७-८

तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सोक धाम तजि काम । रा० च० मा० ५।४६
ऐसेहिं बिनु हरिभजन खगेसा । मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा ।।

रामचरितमानस ७।७६

निज अनुभव अब कहउँ खगेसा । बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा ।।

रामचरितमानस ७।८६।५

कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा । बिनु हरि भजन न भवभय नासा ।।

रामचरितमानस ७।९०।८

राम चरन अनुराग नीर बिनु मल अति नास न पावै । विनयपत्रिका ८२
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई । अभि अन्तर मल कबहुँ न जाई ।।

रामचरितमानस ७।४९।६

३—प्रभु की भक्ति कठिनता से प्राप्त होती है—

कहुँ कहुँ वृष्टि शारदी थोरी । कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी ।।

रा० च० मा० ४।१६।१०

सब ते सो दुर्लभ सुरराया । राम भगति रत गत मद माया ।।

रा० च० मा० १।५४।७

सब सुख खानि भगति तैं मागी । नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी ।।
जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं । जे जप जोग अनल तन दहहीं ।।
रीझेउँ देखि तोरि चतुराई । मागेहु भगति मोहि अति भाई ।।

रामचरितमानस ७।८५।२, ३

४—भक्ति अविरल है :—

अबिरल भगति बिसुद्ध तव, श्रुति पुरान जो गाव ।
जेहि खोजत जोगीस मुनि, प्रभु प्रसाद कोउ पाव ।।

रा० च० मा० । उत्तर० ।८४

राम भगति अबिरल उर तोरें । बसिहि सदा प्रसाद अब मोरें ।।

रा० च० मा० । उत्तर० । ११३।८

अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई । प्रभु देखें तरु ओट लुकाई ।।

रा० च० मा० । अरण्य० । १०।७

अबिरल भगति बिरति बिग्याना । होहु सकल गुन ग्यान निधाना ।।

रामचरितमानस ३।११।२६

५—भक्ति निरुपाधि है :—

राम भगति निरुपम निरुपाधी ।

६—भक्ति अनपायिनी है :—

बार बार बर मागउँ, हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी, भगति सदा सतसंग ॥ रा० च० मा० ७।१४
परमानन्द कृपायतन, मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी, देहु हमहि श्रीराम ॥ रा० च० मा० ७।३४

एकादश आसक्तियाँ

नारद भक्तिसूत्र में कहा गया है कि यद्यपि प्रेमरूपा भक्ति एक ही है, तथापि आसक्ति-भेद से वह एकादश प्रकार की होती है,[१] गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणसक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनसक्ति, तन्मयतासक्ति और परमविरहासक्ति।

तुलसी-साहित्य में एकादश आसक्तियाँ

विनयपत्रिका में भक्ति की दसआसक्तियों के उदाहरण मिल जाते हैं। गोस्वामी जी की भक्ति सेव्य-सेवक भाव की थी। अतः विनयपत्रिका में कान्तासक्ति का उदाहरण नहीं उपलब्ध होता। रामचरितमानस में एकादश आसक्तियों के उदाहरण मिल जाते हैं[२] :—

१. रूपासक्ति—देखि राम मुख पंकज, मुनिवर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति, धन्य जनम सरभंग ॥
मानस।अरण्य०। ९६

नख सिख रुचिर बिन्दु माधव पद छवि निरखहि नयन अघाई।
बिसद किसोर पीन सुन्दर बपु, श्याम सुरुचि अधिकाई ॥
विनयपत्रिका ६२।१,२

२. वात्सल्यासक्ति—कबहुँ उछङ्ग कबहुँ बर पालना।
मातु दुलारहि कहि प्रिय ललना ॥ रा० च० मा० १।२३०
तात मात गुरु सखा तू सब बिधि हितु मेरो। विनय० ७९।३

३. कान्तासक्ति—प्रभुहिं चितै पुनि चितै महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग, जनु बिधु मंडल डोल ॥
रामचरितमानस। बालकाण्ड। २६१

१. गुणमाहात्म्यासक्ति रूपासक्ति पूजासक्ति स्मरणासक्ति दास्यासक्ति सख्यासक्ति कान्तासक्ति वात्सल्या सक्त्यात्मनिवेदना सक्तितन्मयतासक्ति परमविरहासक्ति-रूपा एकधाप्येकादशधा भक्ति। नारदभक्ति सूत्र। ८२

२. भक्ति का विकास—डॉ० मुन्शी राम शर्मा—पृष्ठ ७४७-७४८

४. तन्मयासक्ति —रामहिं देखि एक अनुरागे।
चितवत चले जाहिं संग लागे॥
एक नयन मग छवि उर आनी।
होहिं सिथिल तन मन बर बानी॥

रामचरितमानस। अयोध्या०।१२५

संत भगवंत अंतर निरंतर नहीं, किमपि मति मलिन कह दास तुलसी॥

विनयपत्रिका। ५७।६

५. सख्यासक्ति—देहि सतसंग निज अंग श्रीरंग,
भवभंग कारण शरण सोकहारी। विनयपत्रिका ५७।१

६. परमविरहासक्ति—मन क्रम बचन चरन अनुरागी।
केहि अपराध नाथ हौं त्यागी॥

रामचरितमानस। सुन्दरकाण्ड। ३९

तुम दयालु, बनिहै दिये बलि,
बिलम्ब न कीजिए, जात गलानि गर्‌यो हौं। विनयपत्रिका। २६७।३

७. आत्मनिवेदनासक्ति—तुम तजि हौं कासों कहौं, और को हितु मेरे।

विनयपत्रिका। २७३। १

८. गुण माहात्म्यासक्ति —ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं॥

विनयपत्रिका। १६२

९. पूजासक्ति—प्रीति प्रतीति बढ़ी तब ते, तुलसी सब पाहन पूजन लागे।

कवितावली। उत्तरकाण्ड

करु नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा॥

रामचरितमानस। अयोध्या०। १३०

१०. स्मरणासक्ति—तुलसी तोको कृपालु जो कियो कोसलपालु,
चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करि सो।

विनयपत्रिका। २६४।५

११. दास्यासक्ति—तू दयालु दीन हौं, तू दीन हौं भिखारी।

विनयपत्रिका। ७९

प्रपत्ति

भक्त वत्सल भगवान् की अनुग्रह-शक्ति जीव का भवाब्धि से उद्धार करती है। केवल शरणागति ही भगवान् की इस अनुग्रह-शक्ति को उद्‌बुद्ध करने में समर्थ है। अतएव जीव को निश्छल भाव से भगवान से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि 'हे भगवान् मैं अपराधी, अकिंचन और निराश्रित हूँ। अस्तु आप मेरा उद्धार करें।' यह मानसिक

प्रणत भावना ही शरणागति कही जाती है।[1] आत्मभिमान छोड़कर तथा सब धर्मों का परित्याग कर भगवान् के चरणों में शरणापन्न होना ही शरणागति या प्रपत्ति है।[2] स्वामी हरिदास का मत है कि भगवद् रूप प्राप्य वस्तु की इच्छा करने वाले उपायहीन व्यक्ति की पर्यवसायिनी निश्चयात्मक बुद्धि को ही प्रपत्ति कहते हैं।[3] अनन्य साध्य भगवत प्राप्ति में विश्वासपूर्वक भगवान् को ही एकमात्र उपाय समझकर उनकी प्रार्थना करते रहना प्रपत्ति है। इसी को शरणागति कहते हैं।[4] योगदर्शन में प्रपत्ति के पर्यायवाची शब्द 'ईश्वर-प्रणिधान' का प्रयोग हुआ है।[5]

प्रपत्ति के दो रूप होते हैं :— १. शरणागति २. आत्मसमर्पण। प्रभु की इच्छा के अनुकूल कार्य करना शरणागति है और प्रभु के चरणों में अपने आपको सौंप देना आत्मसमर्पण है।

जो भक्त भगवान् की शरणागति ग्रहण कर लेता है और हृदय से यह कहता है कि 'हे नाथ ! मैं आपका हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिए' भगवान् उसे अभय कर देते है।[6] अपने शरीर, मन और आत्मा को परमात्मा के चरणों में अर्पित कर देने पर भक्त के ऊपर भगवान् का अधिकार हो जाता है और भक्त के सम्पूर्ण कर्म प्रभु को अर्पित हो जाते हैं।[7]

प्रपत्ति और भक्ति में अन्तर

प्रपत्ति और भक्ति में निम्नाङ्कित अन्तर होते हैं[8] :—

(१) भक्ति साधन रूपा है और प्रपत्ति साध्यरूपा या फलरूपा है।

---

१. अहमस्म्यपराधानामालयोऽकिंचनो गतिः।
त्वमेवोपाय भूतो मे भवेति प्रार्थनामतिः॥
शरणागतिरित्युक्ता सा देवेऽस्मिन् प्रयुज्यताम्। अहिर्बुध्न्य संहिता ३७।३०, ३१

२. आधुनिक हिन्दी काव्य में भक्तितत्व —पृष्ठ ६४

३. बुद्धिरध्यवसा त्मा याच्ञा पर्यवसायिनी।
प्राप्येच्छोरनुपायस्य प्रपत्तेरूपमिष्यति॥ पांचरात्र—विष्वक्सेन संहिता

४. अनन्य साध्ये स्वभीष्टे महाविश्वास पूर्वकम्।
तदेकोपायतायां च प्रपत्तिः शरणागतिः॥ पांचरात्र-विष्वक्सेन संहिता

५. तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः। योग दर्शन २।१

६. सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥ वाल्मीकि रामायण ६।१८।३३

७. सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ गीता १८।६६

८. तुलसी के भक्त्यात्मक गीत—डॉ० वचनदेवकुमार —पृष्ठ १६६

(२) भक्ति और प्रपत्ति, इन दोनों में भगवदनुग्रह और प्रेम की प्रकर्षता होती है। दोनों का फल भी भगवान् की प्राप्ति है, परन्तु भक्ति में साधन विशेष को स्वीकार किया जाता है, जबकि प्रपत्ति में साधनानुष्ठान को नहीं स्वीकार किया जाता, केवल भगवान् को स्वीकार किया जाता है।

(३) प्रपत्ति में भगवत्सेवा, भगवान् के नाम का जप और कीर्तन आदि का निषेध तो नहीं है; परन्तु ये कार्य आवश्यक भी नहीं माने जाते।

प्रपत्ति के निम्नांकित तीन अंग होते हैं[१]—

(१) अनन्य शेषत्व—भगवान् का ही दास होना।

(२) अनन्य साधनत्व—एकमात्र भगवान् को तत्प्राप्ति में उपाय मानना।

(३) अनन्य भोग्यत्व—अपने को भगवान् का योग्य समझना।

मार्जार किशोर न्याय और कपिकिशोर न्याय

प्रपत्ति के सम्बन्ध में श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के दोनों मतों—(१) टेंकलै और (२) बड़कलै—में सैद्धान्तिक मतभेद पाया जाता है। टेंकलै मत के अनुसार शरणागति ही जीव के उद्धार का एकमात्र उपाय है। जीव के शरणापन्न होते ही भगवान् उसका उद्धार कर देते हैं। अपने कल्याण के लिए जीव को किसी अन्य कर्म का अनुष्ठान नहीं करना पड़ता। बड़कलै मत के अनुसार जीव को प्रपत्ति के निमित्त भी कर्म करने पड़ते हैं और भगवान् की शरण में जाने के पश्चात् भी अपने कर्त्तव्य का पालन करना पड़ता है। इन दोनों सिद्धान्तों के दृष्टान्त में मार्जार किशोर न्याय और कपिकिशोर न्याय का उल्लेख किया जाता है। मार्जार किशोर स्वयं निश्चेष्ट होकर अपने को अपनी माता के आश्रय में डाल देता है। उस निष्क्रिय बच्चे की रक्षा का उत्तरदायित्व उसकी माता पर होता है। टेंकलै मत वाले इसी न्याय से अपने मत की पुष्टि करते हैं। कपिकिशोर अपनी रक्षा के लिये अपनी माता के शरीर से चिपका रहता है। तभी उसकी पूर्णरूप से रक्षा हो पाती है। इस सिद्धान्त के पृष्ठपोषक बड़कलै मतानुयायियों के अनुसार प्रपत्ति के पश्चात् भी जीव को अपने उद्धार के लिए प्रयत्न करना पड़ता है।[२]

स्वामी रामानन्द के मत से प्रपन्न भक्त दो प्रकार के होते हैं—

(१) दृप्त प्रपन्न—जो स्वकर्मानुसार प्राप्त सुख-दुःख को शरीर की स्थिति तक भोगते हुए शरीरान्त होने पर मोक्ष की प्राप्ति में विश्वास करते हैं। वे अनन्य-शरणागत होते हैं।[३]

---

१. भागवत सम्प्रदाय—प० बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ २१८
२. भागवत सम्प्रदाय—प० बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ २०५
३. अर्थपंचक—पृष्ठ ५

(२) आर्त प्रपन्न—जो सांसारिक दुःखों को सहन नहीं कर सकते और भगवत्प्राप्ति रूपी मुक्ति की तत्काल कामना करते हैं।[१]

पांचरात्र आगम में शरणागति के दो प्रकार बतलाये गये हैं[२]—(१) मानसिक शरणागति (२) कार्मिक शरणागति।

वस्तुतः मानसिक शरणागति ही शरणागति है। कार्मिक अनुष्ठान तो उसी का आचारनिष्ठ व्यावहारिक पक्ष है।[३] नारदपांचरात्र में प्रपत्ति के निम्नांकित तीन भेद बताये गये हैं—

(१) कायिकी प्रपत्ति (२) वाचिकी प्रपत्ति (३) मानसी प्रपत्ति।

इनमें से प्रत्येक प्रकार की प्रपत्ति के सत्, रज और तम के भेद से तीन प्रकार होते हैं।[४] साष्टांग प्रणाम करना और शरीर पर भगवदायुधों को धारण करना कायिकी प्रपत्ति है। मंत्र के अर्थ और तत्व को न जानते हुए भी गुरु के अधीन रहकर मन्त्र का उच्चारण करना वाचिकी प्रपत्ति है। शारीरिकी प्रपत्ति तथा वाचिकी प्रपत्ति से युक्त होकर और मन्त्रार्थ को जानकर मन्त्रार्थ के अनुसन्धान एवं आनुकूल्य-संकल्प से युक्त होकर की जाने वाली प्रपत्ति मानसी प्रपत्ति कही जाती है।[५]

लक्ष्मीतन्त्र और अहिर्बुध्न्य संहिता में प्रपत्ति के निम्नांकित छह अंग बतलाये गये हैं[६]—

---

१. अर्थपंचक—पृष्ठ ५
वैष्णव मताब्ज भास्कर—श्लोक १३५-१३७

२. भागवत सम्प्रदाय—पृष्ठ १३१-१३२

३. तुलसी-दर्शन-मीमांसा, पृष्ठ ३११

४. एषा च त्रिविधा ज्ञेया कारणत्रयभेदतः।
गुणत्रय विभेदादप्येकैका त्रिविधा पुनः॥ नारद पांचरात्र

५. प्रणामांकन मुख्येन न्यासलिंगेन केवलम्।
गुर्वधीना हि भवति प्रपत्तिः कायिकी क्वचित्॥
अविज्ञातार्थ तत्वस्य मन्त्रमात्रयतः परम्।
गुर्वधीनस्य कस्यापि प्रपत्तिर्वाचिकी भवेत्॥
न्यासलिंगवतांगेन धियार्थज्ञस्य मन्त्रतः।
उपासित गुरोः सम्यक् प्रपत्तिर्मानसी भवेत्॥
रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव, पृष्ठ २८३

६. आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा॥
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।
लक्ष्मीतंत्रम् १७।६०, ६१, अहिर्बुध्न्य संहिता ३७।२८, २९

(१) अनुकूलता का संकल्प—भगवान् के प्रति सदैव अनुकूल बने रहने का संकल्प तथा उनका अकिंचन दास और सेवक बनने का दृढ़ निश्चय अनुकूलता का संकल्प कहलाता है।

(२) प्रतिकूलता का वर्जन—भगवान् के प्रति प्रतिकूल भाव और चर्चा से सदैव पराङ्मुख रहना प्रतिकूलता का वर्जन कहलाता है।

(३) रक्षक-रूप में विश्वास—भक्तों के उद्धारक परमेश्वर मेरी भी रक्षा करेंगे, इस बात का विश्वास होना प्रपत्ति का तृतीय अंग है।

(४) गोप्ता-रूप में वरण—भगवान् को अपना रक्षक मानना प्रपत्ति का चतुर्थ अंग है।

(५) आत्म-निक्षेप—अपने को एवं अपने कर्मों को भगवान् के चरणों में समर्पित करना आत्मनिक्षेप कहलाता है।

(६) कार्पण्य—भगवान् के प्रति अपनी दीनता व्यक्त करना प्रपत्ति का कार्पण्य नामक अन्तिम अंग है।

न्यास

न्यास प्रपत्ति का मुख्य अंग है। भगवान् की निर्हेतुकी कृपा को प्रपत्ति और स्वप्रवृत्ति की निवृत्ति को न्यास कहा जाता है।[१] बिना न्यास के आराध्य की कृपा नहीं प्राप्त होती।[२] न्यास से वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है।[३] इसीलिये प्रपत्तिमार्ग में न्यास पर इतना अधिक बल दिया जाता है। न्यास के अन्तर्गत--

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥ वा० रा० ६।१८।३३

को चरम मन्त्र कहा जाता है और प्रपन्नों के लिए इस मन्त्र का सतत चिन्तन करना आवश्यक माना जाता है।[४]

---

१. स्वीय प्रवृत्तेस्तु निवृत्तिरिष्टोन्यासोऽथवेद्योऽपि बुधैः सदैव।
ऐकान्तिकैस्तत्त्वविचारदक्षैः परमात्मनिष्ठैः परमास्तिकैस्तैः ॥
श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर, पृष्ठ १५८

२. न्यासादेवनिरंकुशेश्वरदयानिर्लून मायान्वयः।
हार्दानुग्रहलब्धमध्यधर्मान् द्वाराद्बहिर्निर्गतः ॥ श्रीरामार्चन पद्धति

३. प्राप्यते परमं धाम यतो नावर्तते पुनः।
तेन तेनाप्यते तत्तन्न्यासेनैव महामुने ॥ अहिर्बुध्न्यसंहिता ३७।२६

४. रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव—
डॉ० बदरीनारायण श्रीवास्तव, पृष्ठ २६४

तुलसी-साहित्य में प्रपत्ति का स्वरूप

गोस्वामी तुलसीदास ने भगवान् राम की शरणागत-वत्सलता का उल्लेख करते हुए कहा है कि जिसे करोड़ों ब्राह्मणों की हत्या का पाप लगा हो, वह पापी भी यदि भगवान् राम की प्रपत्ति ग्रहण कर लेता है, तो उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं और भगवान् उसे अपना लेते हैं—

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

रामचरितमानस ६।४८।१

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥

रामचरितमानस। सुन्दरकाण्ड। ३९।४

जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥

रामचरितमानस। सुन्दरकाण्ड। ४८।१,२

गोस्वामी जी ने रामचरितमानस और विनयपत्रिका में प्रपत्ति के छहों अंगों का प्रतिपादन किया है —

(१) अनुकूलता का संकल्प—निम्नांकित पंक्तियों में विभीषण भगवान् श्रीराम के चरणकमलों को सानुराग एवं सभक्ति अवलोकित करने की इच्छा व्यक्त करते हैं —

जे पद परसि तरी रिषि नारी। दंडक कानन पावन कारी॥
हर उर हरि सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई॥
जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि, भरत रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ, इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥

रामचरितमानस। सुन्दरकाण्ड। ४२

इसी प्रकार निम्नांकित पद में गोस्वामी जी ने अन्य सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति उदासीन होकर एकमात्र भगवान् श्रीराम से ही सम्बन्ध जोड़ने की कामना व्यक्त की है :—

जानकी जीवन की बलि जैहौं।

× × ×

नातो नेह नाथ सों करि सब नातो नेह बहैहौं। विनयपत्रिका १०४

२. प्रतिकूलता का वर्जन—निम्नलिखित पदों में गोस्वामी जी ने भगवान् श्रीराम की प्रतिकूलता का त्याग कर उनके प्रति अनुरक्त होने को उत्तम बतलाया है—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥

तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज बनितन्हि, भये मुद मङ्गलकारी ॥
नाते नेह राम के मनियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटे, बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो ॥ विनयपत्रिका । १७८

अब लौं नसानी अब न नसैहौं ।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहि कसैहौं ॥ विनयपत्रिका । १०५

३. रक्षक के रूप में विश्वास—गोस्वामी जी के विचार से भगवान् राम के समान दीनों का रक्षक कोई अन्य नहीं है :—

दीनबन्धु दूसरो कहँ पावौं ।
को तुम बिनु पर-पीर पाइ है ! केहि दीनता सुनावौं ॥

× × ×

तुलसी प्रभु जिय की जानत सब, अपनो कछुक जनावौं ।
सो कीजे, जेहि भाँति छाँड़ि छल द्वार परो गुन गावौं ॥

विनयपत्रिका । २३२।१-४

तू गरीब को निवाज, हौं गरीब तेरो ।
बारक कहिये कृपालु, तुलसिदास मेरो ॥ विनयपत्रिका । ७८।६

इसीलिए गोस्वामी जी भगवान् श्रीराम की शरण में जाते हैं :—

भरोसो जाहि दूसरो सो करो ।
मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्यान करो ॥ विनय पत्रिका २२६।१

४. गोप्ता-रूप में वरण--गोस्वामी जी ने श्रीराम को अपना रक्षक मान लिया है—

तुम सम ईस कृपालु परमहित पुनि न पाइहौं हेरें ।
यह जिय जानि रहौं सब तजि रघुबीर भरोसे तेरें ॥

विनयपत्रिका । १८७।४,५

५. आत्म-निक्षेप—गोस्वामी जी के मत से जीव और उससे सम्बन्धित शरीर तथा अन्य सभी पदार्थों पर प्रभु का अधिकार होता है। इसीलिए गोस्वामी जी ने श्रीराम के चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया है—

मेरे रावरियै गति है रघुपति बलि जाउँ ।
निलज नीच निरधन निरगुन कहँ, जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ ॥

× × ×

कीजे दास दास तुलसी अब, कृपासिन्धु बिनु मोल बिकाउँ ।।
विनयपत्रिका । १५३।१,३

६. कार्पण्य—गोस्वामी जी ने निम्नांकित पदों में अपनी दीनता व्यक्त करते हुए श्रीराम से अपने उद्धार की प्रार्थना की है—

दीनबन्धु सुखसिंधु कृपाकर कारुनीक रघुराई ।
सुनहु नाथ ! मन जरत त्रिबिध ज्वर, करत फिरत बौराई ।।

× × ×

संजम, जप, तप, नेम, धरम, ब्रत बहु भेषज-समुदाई ।
तुलसिदास भवरोग राम-पद-प्रेम-हीन नहिं जाई ।। विनयपत्रिका । ८१।१,५
माधव मो समान जग माहीं ।
सब बिधि हीन मलीन दीन अति लीन विषय कोउ नाहीं ।। विनयपत्रिका । ११४
तुम तजि हौं कासो कहौं और को हितू मेरे ।
दीनबन्धु सेवक सखा आरत अनाथ पर सहज छोह केहि केरे ।
विनयपत्रिका । २७३
जाउँ कहाँ तजि चरन तिहारे ।
काको नाम पतितपावन जग केहि अति दीन पियारे । विनयपत्रिका । १०१

विनय की सात भूमिकायें

भक्तिशास्त्र में विनय की निम्नांकित सात भूमिकाओं[1] का उल्लेख किया गया है :—

१. दीनता—इस भूमिका में भक्त अपने को नितान्त तुच्छ समझकर अपने अपराधों का सारा दायित्व अपने ऊपर ले लेता है ।
२. मानमर्षिता—यहाँ भक्त निरभिमान होकर भगवान् की शरण में आता है ।
३. भय-दर्शना—इस भूमिका में भक्त अपने मन को विविध प्रकार का भय दिखलाकर उसे प्रभु के चरणों की ओर उन्मुख करता है ।
४. भर्त्सना—भर्त्सना की भूमिका में भक्त अपने मन को डाँट-डपटकर और उसकी निन्दा कर उसे भगवान की ओर प्रवृत्त करता है ।

---

१. दैन्यं च मानमर्षित्वं भयस्य दर्शनं तथा ।
भर्त्सनाश्वासनं चैव मनोराज्यं विचारणा ।
मुनिभिरुक्ता भक्तानां सप्तैता भूमिकाः स्मृताः ।।
तुलसीदास और उनका युग—पृष्ठ १६७ पर उद्धृत

५. आश्वासन—इस भूमिका में स्थित भक्त पूर्ण रूप से प्रभु के ऊपर निर्भर हो जाता है और अपने मन को आश्वासन देकर उसे प्रभु-चरणों की सेवा करने के लिए प्रेरित करता है।

६. मनोराज्य—भक्त मनोराज्य की भूमिका में विचरण करता हुआ भगवान् से अपनी कामनाओं की पूर्ति की आशा किया करता है।

७. विचारणा—भक्त संसार की असारता का विचार कर अपने मन को भगवद्-भक्ति में लीन रखने का प्रयत्न करता है।[१]

विनयपत्रिका में विनय की सप्त भूमिकाओं का उल्लेख

विनयपत्रिका में विनय की सभी भूमिकाओं के उदाहरण उपलब्ध होते हैं—

१. दीनता—प्रस्तुत पद में कवि अपने को अपराधी मानकर दीनता व्यक्त कर रहा है :—

कैसे देउँ नाथहिं खोरि।
काम लोलुप भ्रमत मन हरि, भगति परिहरि तोरि ॥

× × ×

लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आसा डोरि।
बात कहौं बनाइ बुध ज्यों बर बिराग निचोरि ॥
एतेहुं पर तुम्हरो कहावत, लाज अँचई घोरि।
निलजता पर रीझि रघुबर, देहु तुलसिहिं छोरि ॥ विनयपत्रिका। १५८

२. मानमर्षिता—निम्नांकित पद से यह सूचित होता है कि कवि अभिमान त्यागकर प्रभु की शरण में आ गया है :—

माधव ! मो समान जग माहीं।
सब बिधि हीन, मलीन दीन अति, लीन विषय कोउ नाहीं ॥

× × ×

नाहिन कछु औगुन तुम्हार, अपराध मोर मैं माना।
ग्यान-भवन, तनु दियेहु नाथ, सोउ पाय न मैं प्रभु जाना ॥

× × ×

सब प्रकार मैं कठिन, मृदुल हरि, दृढ़ बिचार जिय मोरे।
तुलसिदास प्रभु मोह सृंखला, छुटिहि तुम्हारे छोरे ॥

विनयपत्रिका। ११४

---

१. विनयपत्रिका : आलोचना और भाष्य—श्री दानबहादुर पाठक—पृष्ठ ६५-६६

३. भय-दर्शना—गोस्वामी जी वृद्धावस्था में परिवार के व्यक्तियों के द्वारा की जाने वाली उपेक्षा और तिरस्कार का भय दिखलाकर अपने मन को प्रभु से अनुराग करने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं—

मनि पछितैहैं अवसर बीते।
दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु, करम बचन अरु ही ते॥
× ० × ×
सुत-बनितादि जानि स्वारथ रत, न करु नेह सब ही ते।
अंतहु तोहिं तजेंगे पामर! तू न तजै अब ही ते॥
अब नाथहिं अनुरागु, जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ, विषय-भोग बहु घी ते॥

विनयपत्रिका । १६८

४. भर्त्सना—कवि अपने मन की मूढ़ता का उल्लेख कर उसकी भर्त्सना करता है और उसे प्रभु की ओर उन्मुख करता है—

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि रामभगति सुर सरिता, आस करत ओस कन की॥
× × ×
कहँ लौ कहौं कुचाल कृपानिधि! जानत हो गति जन की।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुःख, करहु लाज निज पन की॥

विनयपत्रिका । ६०

५. आश्वासन—कवि अपने मन को आश्वस्त करते हुए कहता है कि हे मन, भगवान् राम की शरण में जाने पर तुम्हारा कल्याण अवश्य होगा—

अजहुँ आपने राम के करतब समुझत हित होइ।
कहँ तू, कहँ कोसलधनी, तोको कहा कहत सब कोइ॥
× × ×
जपहि नाम रघुनाथ को, चरचा दूसरी न चालु।
सुमुख, सुखद, साहिब, सुधी समरथ कृपालु नतपालु॥
सजल नयन, गदगद गिरा, गहबर मन, पुलक सरीर।
गावत गुनगन राम के केहि की न मिटी भव-भीर॥
प्रभु कृतग्य सरबग्य है, परिहरु पाछिली गलानि।
तुलसी तोसों राम सों कछु नई न जान-पहचानि॥

विनयपत्रिका । १९३

ऐसो को उदार जगमाहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं॥

जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ।।
जो संपति दससीस अरप करि, रावन सिव पहँ लीन्ही।
सो संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्हीं ।।
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो ।।

विनयपत्रिका । १६२

६. मनोराज्य—मनोराज्य की भूमिका में स्थित कवि साधु-वृत्ति ग्रहण करने की आकांक्षा व्यक्त करता है और अपने मन को प्रभु में लीन करना चाहता है। वह भगवान् से प्रार्थना करता है कि हे प्रभु ! आप मेरी इन कामनाओं को पूरा कर दें—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ कृपालु कृपा तें संत स्वभाव गहौंगो ।।
जथा लाभ सन्तोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरंतर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ।।
परुष बचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर गुन, नहिं दोष कहौंगो ।।
परिहरि देह जनित चिन्ता, दुख सुख सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरि भगति लहौंगो ।।

विनयपत्रिका । १७२

जानकी जीवन की बलि जैहौं।
चित कहै रामसीय-पद परिहरि अब न कहूँ चलि जैहौं ।।
उपजी उर प्रतीति सपनेहुँ सुख, प्रभु पद बिमुख न पैहौं।
मन समेत या तन के बासिन्ह, इहै सिखावन देहौं ।।
श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं रसना और न गैहौं।
रोकिहौं नयन बिलोकत औरहिं, सीस ईस ही नैहौं ।।
नातो नेह नाथ सों करि सब, नातो नेह बहैहौं।
यह छर भार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं ।।

विनयपत्रिका । १०४

अब लौं नसानी अब न नसैहौं।
रामकृपा भव-निसा सिरानी, जागे फुनि न डसैहौं ।।
पायो नाम चारु चिंतामनि, उर कर ते न खसैहौं।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं ।।

पर बस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन निज बस ह्वै न हँसैहौं ।
मन मधुकर पन कै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं ।।

विनयपत्रिका । १०५

और मोहि को है, काहि कहिहौं ?
रंकराज ज्यों मन को मनोरथ, केहि सुनाइ सुख लहिहौं ।।
जम-जातना जोनि संकट सब सहे दुसह अरु सहिहौं ।
मोको अगम, सुगम तुम को प्रभु ! तउ फल चारि न चहिहौं ।।
खेलिबे को खग मृग तरु किंकर ह्वै रावरो राम हौं रहिहौं ।
यहि नाते नरकहुँ सचु या बिनु परमपदहु दुख दहिहौं ।।
इतनी जिय लालसा दास के कहत पानही गहिहौं ।
दीजै बचन कि हृदय आनिये तुलसी को पन निर्बहिहौं ।।

विनयपत्रिका । २३१

७. विचारणा—कवि संसार की असारता का विचार कर अपने मन को भगवद्-भक्ति रूपी सुधा से संतृप्त करना चाहता है—

मैं तोहि अब जान्यो संसार ।
बाँधि न सकहि मोहि हरि के बल, प्रगट-कपट-आगार ।।
देखत ही कमनीय, कछू नाहिन पुनि किये बिचार ।
ज्यों कदली तरु मध्य निहारत, कबहुँ न निकसत सार ।।
तेरे लिए जनम अनेक मैं फिरत न पायो पार ।
महामोह-मृगजल सरिता महँ बोर्यो हौं बारहि बार ।।

विनयपत्रिका । १८८।१-६

केशव ! कहि न जाइ का कहिये ।
देखत तव रचना विचित्र हरि ! समुझि मनहिं मन रहिये ।।
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे ।
धोये मिटइ न मरइ भीति, दुख पाइअ एहि तनु हेरे ।।
रबिकर नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं ।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ।।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै ।।

विनयपत्रिका । १११

जागु, जागु, जीव जड़ ! जोहै जग-जामिनी ।
देह गेह नेह जानि जैसे घन दामिनी ।।

सोवत सपनेहुँ सहै संसृति संताप रे।
बूड्यो मृग-बारि खायो जेवरी को साँप रे॥
कहैं बेद बुध तू तो बूझि मनमाहिं रे।
दोष-दुःख सपने के जागे ही पै जाहिं रे॥
तुलसी जागे ते जाय ताप तिहूँ ताप रे।
राम नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे॥

विनयपत्रिका। ७३

तुलसीदास जी की उपासना-पद्धति

हम भक्ति के शास्त्रीय रूप का प्रतिपादन करते समय देख चुके हैं कि साधक की प्रवृत्ति के भेद से भक्ति तीन प्रकार की होती है—

(१) सात्विकी (२) राजसी (३) तामसी।

सात्विक श्रद्धा से युक्त होने के कारण सात्विकी उपासना अति उदात्त एवं स्वत्व प्रकाशक होती है। उपास्य में अनन्यासक्ति ही इसका सर्वस्व है। उपासक में किसी प्रकार की स्पृहा शेष नहीं रह जाती। जब उसकी आसक्ति अपनी पराकाष्ठा में पहुँच जाती है, तब वह सम्पूर्ण विश्व को उपास्यमय देखने लगता है।[1] भगवद्-विषयक विशुद्ध आत्मनिवेदन तथा आत्मसमर्पण[2] की महतीभावना से युक्त होने के कारण गोस्वामी जी की उपासना सात्विक उपासना की कोटि में आती है। उनके उपास्य भगवान् राम हैं जो ब्रह्म हैं। अवतार की दृष्टि से श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। अतएव उनसे सम्बन्धित भक्तिभावना में अपने आप सात्विकता आविर्भूत हो जाती है।

गोस्वामी तुलसीदास ने प्रत्येक जन्म में भगवान् राम के चरणों में रति की कामना की है :—

यत्र कुत्रापि मम जन्म निज कर्म वश भ्रमत जग योनि संकट अनेकं।
तत्र त्वद्भक्ति सज्जन समागम, सदा भवतु मे राम विश्रामेकं॥

विनयपत्रिका। ५७

चहौं न सुगति सुमति संपति कछु रिधि सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग राम पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई॥

विनयपत्रिका। १०३

१. तुलसीदास और उनका युग—डॉ० राजपति दीक्षित, पृष्ठ २१२
२. भरोसो जाहि दूसरो सो करो।

सेलिये को खग मृग तरु कंकर ह्वै रावरो राम हौं रहिहौं ।
यहि नाते नरकहुँ सचु या बिनु परमपदहुँ दुख दहिहौं ।।

विनयपत्रिका । २३१

कालु बिलोकि कहै तुलसी मन में प्रभु की परतीति अघाई ।
जन्मु जहाँ तहँ रावरे सों निबहै भरि देह सनेह सगाई ।

कवितावली ७।५८

तुलसीदास जी कहते हैं कि हे मन ! या तो भगवान् राम तुझे प्रिय लगें, या फिर तू ही भगवान श्रीराम का प्रिय बन जा । दो में से एक अवस्था होने पर ही तेरा कल्याण होगा :—

के तोहि लागहिं राम प्रिय, कै तू प्रभु प्रिय होहि ।
दुई में रुचै जो सुगम सो, कीबे तुलसी तोहि ।। दोहावली । ७८

अनन्य प्रेम—गोस्वामी जी ने चातक को अपने अनन्य रामप्रेम का प्रतीक स्वीकार करते हुए लिखा है कि भले ही जलद अपने प्रेमी चातक की स्मृति भुला दे, उस पर ओलों की वर्षा करे और वज्रपात द्वारा उसके शरीर को दग्ध कर नष्ट कर दे, तब भी चातक अनन्य निष्ठा से बादल की ओर ही देखता रहता है । उसी को पुकारता रहता है । चातक चाहे इतना अक्षम हो जाये, कि उसके कंठ से शब्द निकलना बन्द हो जाये, किन्तु उसके हृदय में बादल के प्रति जो अनन्य प्रेम होता है, वह कभी नहीं समाप्त होता है । तुलसीदास जी ने दोहावली के ३६ दोहों (चातक छत्तीसी) में चातक की इसी अनन्य निष्ठा की प्रशंसा की है :—

रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखिगे अंग ।
तुलसी चातक प्रेम को, नित नूतन रुचि अंग ।। दोहावली । २८०
बरषि परुष पाहन पयद, पंख करो टूक टूक ।
तुलसी परी न चाहिए, चतुर चातकहि चूक ।। दोहावली । २८२
उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर ।
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर ।। दोहावली । २८३
गोस्वामी जी ने रामरूप घनश्याम के लिए अपने को चातक बना लिया है—
एक भरोसो एकै बल, एक आस बिस्वास ।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास ।। दोहावली । २७७
देहि मा मोहि पन प्रेम यह नेम निज राम घनश्याम तुलसी पपीहा ।

विनयपत्रिका । २[illegible]

उन्होंने रामचरितमानस में भी चातक की अनन्य अनुरक्ति की प्रशंसा की है :—

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जलु पबि पाहन डारउ॥
चातकु रटनि घटें घटि जाई। बढ़े प्रेमु सब भाँति भलाई॥

रामचरितमानस। अयोध्याकाण्ड। २०५

चातक एकमात्र स्वातिनक्षत्र के जल का ही अभिलाषी होता है। मरते समय भी वह अपनी चोंच ऊपर उठाये रहता है, जिससे उसके मुख में स्वातिनक्षत्र के अतिरिक्त अन्य सामान्य जल न प्रविष्ट हो जाये --

बध्यो बधिक पर्‌यो पुन्यजल, उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम पट, मरतहुँ लगी न खोंच॥

गोस्वामी तुलसीदास भी अपने राम के प्रति अनन्य निष्ठ हैं। वे कहते हैं कि यदि मैं किसी और देव का नाम लूँ, तो मेरी जिह्वा गल जाये—

गरैगी जीह जो कहौं और को हौं। विनयपत्रिका। २२६

कुछ लोग तुलसीदास जी की श्री राम के प्रति अनन्य निष्ठा को देखकर उन्हें चिढ़ाया करते थे कि श्रीराम तो बारह कला के अवतार थे और श्री कृष्ण सोलह कलाओं से युक्त पूर्ण अवतार थे। इसलिए आप पूर्णावतार कृष्ण की आराधना क्यों नहीं करते ? तुलसीदास ऐसे आलोचकों पर खीजकर कहा करते थे कि श्रीराम चाहे एक नृपति मात्र हों और चाहे वे ईश्वर के अवतार हों। मुझे तो वे अच्छे लगते हैं। अतः उनके नृपति होने या अंशावतार होने से मेरी भक्ति-भावना में कोई अन्तर नहीं आता। मैं तो यावज्जीवन उन्हीं का गुलाम बना रहूँगा —

जौ जगदीस तौ अति भलो, जौ महीस तौ भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि, राम चरन अनुराग॥ दोहावली। ६१

गोस्वामी जी कहते हैं कि न तो मुझे भक्ति का बल है और न ज्ञान का। मुझे तो अपने प्रभु की कृपा का भरोसा है :—

ताहि तें आयो सरन सबेरें।
ग्यान बिराग भगति साधन कछु सपनेहुँ नाथ ! न मेरें॥

× × ×

बिष पियूष सम करहु अगिनि हिम, वारि सकहु बिनु बेरें।
तुम सम ईस कृपालु परम हित पुनि न पाइहौं हेरें॥
यह जिय जानि रहौं सब तजि रघुबीर भरोसे तेरें।
तुलसिदास यह बिपति बागुरो तुम्हहि सों बनै निबेरें॥

विनयपत्रिका। १८७

वे प्रण करते हैं कि अब तक मेरे इष्ट देव श्रीराम मुझे स्वीकार न करेंगे, मैं उनके द्वार से न हटूँगा :—

तन करिहौं हठि आजु तें राम द्वार पर्‌यो हौं ।
तू मेरो यह बिन कहे उठि हौं न जनम भरि प्रभु की सौं करि निबर्‌यो हौं ॥
विनयपत्रिका । २६७।१

गोस्वामी जी की उपासना का लक्ष्य है—निष्काम, अविचल, अटल और अनन्य प्रेम ।

वे गणेश[1], सूर्य[2], शम्भु[3], देवी[4], गंगा[5] आदि सभी देवी-देवताओं से यही प्रार्थना करते हैं कि मेरे हृदय में भगवान् राम और सीता निवास करें और उनके चरणों में मेरी भक्ति-भावना सुदृढ़ हो ।

गोस्वामी जी की कामना है कि जिस प्रकार लोभी को दाम प्रिय होता है और कामी को स्त्री प्रिय लगती है, उसी प्रकार श्रीराम मुझे प्रिय लगें—

कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम ॥
रामचरितमानस । ७।१३०

विनयपत्रिका में प्रियता के आलम्बन के रूप में जल, जीवन, मणि, धन और स्त्री का उल्लेख किया गया है, जो क्रमशः मीन, जीव, साँप, लोभी और नवयुवक को

---

१. गाइये गनपति जग बंदन । संकर-सुवन भवानी-नंदन ।
× × ×
मांगत तुलसिदास कर जोरे । बसहि रामसिय मानस मोरे ॥ विनय० । १

२. दीनदयालु दिवाकर देवा । कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा ॥
× × ×
वेद-पुरान प्रगट जसु जागे । तुलसी राम भगति बर मांगे ॥ विनय० । २

३. को जाँचिये सम्भु तजि आन ।
× × ×
देहु कामरिपु रामचरन रति, तुलसिदास कहँ कृपा निधान ॥ विनय० । ३
जाँचिये गिरिजापति कासी । जासु भवन अनिमादिक दासी ॥
× × ×
तुलसिदास जाचक जस गावै । बिमल भगति रघुपति की पावै ॥ विनय० । ६
तुलसिदास हरिचरन कमल बर देहु भगति अविनासी । विनय० । ९
देहि कामारि ! श्रीरामपदपंकजे भक्ति अनवरत गतभेद माया । विनय० । १०

४. रघुपति पद परम प्रेम, तुलसी यह अचल नेम ।
देहु ह्वै प्रसन्न पाहि प्रणत पालिका ॥ विनयपत्रिका । १६

५. देहि रघुबीर-पद प्रीति निर्भर मातु दास तुलसी त्रासहरणि भवभामिनी ॥
विनयपत्रिका । १८

अत्यन्त प्रिय होते हैं। उदाहृत उपमानों के तुल्य ही श्रीराम मुझे अतिशय प्रिय लगें, कवि ने अपनी इस भावना को निम्नांकित पद में व्यक्त किया है :—

राम कबहुँ प्रिय लागिहौ जैसे नीर मीन को।
सुख जीवन ज्यों जीव को, मनि ज्यों फनि को हित, ज्यों धन लोभ लीन को।।
ज्यों सुभाय प्रिय लगति नागरी नागर नवीन को।
त्यों मेरे मन लालसा करिये करुनाकर ! पावन प्रेम पीन को।।
मनसा को दाता कहैं श्रुति प्रभु प्रवीन को।
तुलसिदास को भावतो, बलि जाउँ दयानिधि ! दीजे दानदीन को।

विनयपत्रिका। २६९

तुलसीदास जी का मत है कि हमें अपनी इन्द्रियों के द्वारा भगवान् श्रीराम का ही मनन-चिन्तन; दर्शन और श्रवण करना चाहिये। हमारे नेत्र भगवान् की रूपमाधुरी का दर्शन करने के लिए मछली के समान व्याकुल हों, हमारे कर्ण भगवान की ही कथा का श्रवण करें, मुख से हम उन्हीं का नाम-जप करें, हमारे हृदय में श्रीराम की ही मूर्ति प्रतिष्ठित हो, हमारी बुद्धि श्रीराम में ही लगी रहे, हमारे हृदय में सदैव यही विश्वास बना रहे कि हमारा कल्याण श्रीराम की ही कृपा से सम्भव है, उनमें हमारी अनुरक्ति हो और हमें उन्हीं का बल हो, ऐसी चित्तवृत्ति के होने पर ही हमारे मानव-जीवन की सार्थकता है; अन्यथा हमारा जीवन व्यर्थ है :—

सिय राम सरूपु अगाध अनूप बिलोचन मीनन को जलु है।
श्रुति राम कथा, मुख राम को नामु, हिएँ पुनि रामहि को थलु है।।
मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति राम सों, रामहि को बलु है।
सबकी न कहै, तुलसी के मतें इतनो जग जीवन को फलु है।।

कवितावली। ७।३७

भक्ति का मूल तत्त्व है महत्त्व की अनुभूति। भक्त अपने उपास्य को सबसे बड़ा मानता है और भगवान् के समक्ष अपने को सबसे छोटा समझता है। गोस्वामी जी के काव्यों में इस सिद्धान्त की पूर्ण निष्पत्ति हुई है। वे कहते हैं कि भगवान् श्रीराम से कोई बड़ा नहीं है और मुझसे कोई छोटा नहीं है—

राम सों बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो ?
राम सों खरो है कौन, मोसों कौन खोटो ? विनयपत्रिका। ७२

माधव ! मो सम जग माहीं।
सब बिधि हीन, मलीन, दीन अति, लीन विषय कोउ नाहीं।।
तुम सम हेतु रहित कृपालु आरत हित ईस न त्यागी।
मैं दुःख सोक बिकल कृपालु ! केहि कारन दया न लागी।।

विनयपत्रिका। ११४

विनयपत्रिका गोस्वामी तुलसीदास की लघुता तथा उनके द्वारा स्वयं आरोपित दोषों की आत्मस्वीकृति है। प्रभु के महत्त्व के समक्ष उन्हें अपनी लघुता का भान होता है। वे अपने उद्धारक इष्टदेव के सामने अपना हृदय खोलकर रख देते हैं। गोस्वामी जी दुष्टों के सामने अपना स्वाभिमान नहीं खोते हैं। वे दुष्टों को काक कहकर उनकी निन्दा करते हैं और अपने को हंस कहते हैं :—

काक कहहिं कलहंस कठोरा। रामचरितमानस। बालकांड। ६।२

परन्तु श्रीराम के सामने आते ही उन्हें अपने से बड़ा पापी और नीच कोई दूसरा नहीं दिखलायी पड़ता—

तऊ न मेरे अघ अवगुन गनिहैं।
जो जमराज काज सब परिहरि, इहै ख्याल उर अनिहै।। विनयपत्रिका। ९५
अघ अनेक अवलोकि आपने, अनघ नाम अनुमान डरौं। विनयपत्रिका। १४१
मैं पतित तुम पतित-पावन दोउ बानक बने। विनयपत्रिका। १६०
तुम सम दीनबन्धु, न दीन कोउ मो सम, सुनहु नृपति रघुराई।
मो सम कुटिल-मौलिमनि नहिं जग, तुम सम हरि! न हरन कुटिलाई।।
हौं मन बचन करम-पातक-रत, तुम कृपालु पतितन गतिदाई।
हौं अनाथ प्रभु! तुम अनाथ हित, चित यहि सुरति कबहुं नहिं जाई।।
विनयपत्रिका। २४२

हौं प्रसिद्ध पातकी तू पापपुञ्ज हारी। विनयपत्रिका। ७९

उनके द्वारा अपने दोषों का यह विज्ञापन उनके दैन्य और विनय का ही परिचायक है, उनके दोषाधिक्य का सूचक नहीं है। गोस्वामी जी अत्यन्त साधुस्वभाव के सन्त थे। उनके समकालिक सन्त नाभादास ने उन्हें कलिकाल के कुटिल जीवों के उद्धार-हेतु अवतरित वाल्मीकि बतलाया है :—

त्रेता काव्य निबन्ध करिय सत कोटि रमायन।
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन।।
पुनि भक्तन सुख देन बहुरि लीला बिस्तारी।
रामचरन रसमत्त रहत अहनिसि व्रतधारी।।
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लिए।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित वालमीकि तुलसी भये।। भक्तमाल-छप्पय। १२९

पुरुषकार-सिद्धान्त

पुरुषकार का अर्थ होता है पुरुषार्थ।[1] याज्ञवल्क्य स्मृति में कर्मसिद्धि को

---

१. पुरुषकारः पुरुषस्य कृतिः। पौरुषम्। शब्द कल्पद्रुम—पृष्ठ १६५

भाग्य और पुरुषार्थ में संनिहित बतलाया गया है।[1] पंचतन्त्र में कहा गया है कि पुरुषार्थ के बिना भाग्य फल नहीं प्रदान करता।[2] मत्स्य पुराण में कहा गया है कि दैव, पुरुषकार (पुरुषार्थ) और काल; ये तीनों मिलकर फल प्रदान करते हैं।[3] महाभारत में प्रारब्ध के साथ पुरुषकार अर्थात् पुरुषार्थ का उल्लेख किया गया है।[4] परवर्ती साहित्य में इस सिद्धान्त का प्रयोग उस व्यक्ति के लिए होने लगा, जो भक्ति की भावना और प्रणति को भगवान् तक पहुँचा दे। कोई व्यक्ति चाहे कि मैं भजन और पूजा पाठ करके मोक्ष प्राप्त कर लूं, तो यह उसकी मूर्खता है। अनेक जड़ पदार्थों और पशु, पतङ्ग, कीट आदि योनियों में जीव का कौन पुरुषार्थ है जिससे वह मनुष्य-योनि में आ सके। यह उस दयालु परमेश्वर की ही असीम कृपा है कि वह हमें साधन-धाम मनुष्य-योनि प्रदान करता है—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

रामचरितमानस। ७।४४।३

भगवान् की कृपा होने पर ही जीव का कल्याण होता है। जीव के कल्याण-साधन में माता सीता की कृपा का विशेष महत्त्व है,[5] क्योंकि वे श्रीराम को अतिशय प्रिय हैं:—

जनकसुता जगजननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की।

रामचरितमानस। बालकांड। १८।४

अतएव भगवच्छरणागति में माता जानकी का पुरुषकारत्व सर्वथा अपेक्षित है।[6] पुरुषकार में तीन गुण अपेक्षित होते हैं—कृपा, पारतन्त्र्य और अनन्यार्हत्व।[7] भगवती सीता में ये तीनों गुण पाये जाते हैं। जीवों को संसार में दुःख पाते देख

---

१. दैवे पुरुषकारे च कर्मसिद्धिर्व्यवस्थिता। याज्ञवल्क्यस्मृति। १।३४९

२. पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति। पंचतंत्रम्। ३२

३. दैवं पुरुषकारश्च कालश्च मनुजोत्तम।
त्रयमेतन्मनुष्यस्य पिण्डितं स्यात् फलावहम्॥ मत्स्य पुराण। १६५वां अध्याय

४. केचित् पुरुषकारं तु प्राहुः कर्मसु मानवाः।
दैवमित्यपरे विप्राः स्वभावं भूतचिन्तकाः॥
महाभारत। शान्तिपर्व। २३२।१६

५. सीतापुरुषकारार्थो श्रीत्यनेन पदेन तु। श्रीवैष्णवमताब्ज भास्कर, पृष्ठ ६

६. पुरुषकारपराविनिरुद्धते सकमलाकमलाकमलादिना इयमसौकुशलैस्तदुपायतानुभि-मतायगुणैः परैः परैः। श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर, पृष्ठ १७

७. पुरुषकारता कान्ते गुणत्रयमपेक्षितम्।
दीने कृपा पारतन्त्र्यानन्यार्हत्वे सती॥ श्रीवचनभूषण, पृष्ठ ८०

दयार्द्र होकर सीता जी उन्हें ईश्वरोन्मुख करने में जो प्रयत्न करती हैं, वह उनकी कृपा के फलस्वरूप होता है। वे अनुकूल अवसर पाकर पति से आश्रित जीवों के दुष्कृत्यों को क्षमा कराती हैं। यह कार्य उनके पारतन्त्र्य गुण से सिद्ध होता है। सदैव अनन्य भाव से पतिपरायणा होकर श्रीराम की सेवा करने में उनके अनन्यार्हत्व गुण का प्रकाश होता है। इस प्रकार जीव के लिए श्रीराम की कृपा से सीताजी का अनुग्रह अधिक महत्त्वपूर्ण है।[१] इसीलिए गोस्वामी जी ने विनयपत्रिका के निम्नांकित पदों में माता सीता से प्रार्थना की है कि आप अनुकूल अवसर देखकर प्रभु श्रीराम से मेरे उद्धार की प्रार्थना करें :—

कबहुँक अंब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन कथा चलाइ॥
दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ॥
बूझिहैं 'सो है कौन' कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ॥
जानकी जगजननि जनकी किये बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ-गुन-गन गाइ॥ विनयपत्रिका। ४१
कबहुँ समय सुधि द्याइबी, मेरी मातु जानकी।
जन कहाइ नाम लेत हौं, किये पन चातक ज्यों, प्यास प्रेम-पान की॥
सरल प्रकृति आपु जानिए करुना-निधान की।
निज गुन-अरिकृत अनहितौ, दास-दोष सुरति चित रहत न दिये दान की॥
बानि बिसारन सील है मानद अमान की।
तुलसीदास न बिसारिये, मन करम बचन जाके सपनेहुँ गति न आन की॥
विनयपत्रिका। ४२

बालक पिता से भय करता है। इसीलिए वह पिता से अपने हृदय की पूरी बात नहीं कह पाता। माता के प्रति उसके हृदय में अगाध विश्वास होता है। अतः वह अपनी माता से प्रार्थना कर उन्हें पिता की अनुकूलता प्राप्त कराने में माध्यम बनाता है।

भक्ति-रस

आचार्य मम्मट ने देवविषयक रति को भाव कहा है। उन्होंने भक्ति को रस के रूप में मान्यता नहीं प्रदान की है।[२] किन्तु परवर्ती वैष्णव आचार्यों—रूपगोस्वामी

---

१. श्री वचनभूषण, पृष्ठ ५६

२. रतिर्देवादिविषया, व्यभिचारी तथाऽञ्जितः। भावः प्रोक्तः। काव्यप्रकाश ४।३५

आदि—ने भक्ति को रस माना है। रूपगोस्वामी के मत से भगवान् कृष्ण के प्रति रति नामक स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के योग से भक्तों के हृदय में भक्ति रस के रूप में अभिव्यक्त हो जाता है।[१] उज्ज्वल नीलमणि में भक्तिरस को मधुर रस कहा गया है।[२]

भक्ति-रस के भेद

आचार्य रूपगोस्वामी ने भक्ति रस के दो भेद बतलाये हैं[३] :—

१—मुख्य भक्ति रस

२—गौण भक्ति रस

मुख्य भक्ति रस के पाँच उपभेद होते हैं[४] :—

१. शान्त २. प्रीति ३. प्रेयान् ४. वत्सल ५. मधुर।

इनमें से पूर्व की अपेक्षा परवर्ती रूप श्रेष्ठ होता है।

गौण भक्ति रस के सात उपभेद होते हैं[५] :—

१. हास्य २. अद्भुत ३. वीर ४. करुण ५. रौद्र ६. भयानक ७. वीभत्स।

---

१. विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।
स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभिः॥
एषा कृष्णरतिः स्थायीभावो भक्तिरसो भवेत्।
हरिभक्तिरसामृतसिन्धु। द० वि०। ११५-६.

२. मुख्यरसेषु पुरा यः संक्षेपेणोदितो रहस्यत्वात्।
पृथगेव भक्तिरसराट् स विस्तरेणोच्यते मधुरः॥
वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः स्वाद्यतां मधुरा रतिः।
नीता भक्तिरसः प्रोक्तो मधुराख्यो मनीषिभिः॥
उज्ज्वल नीलमणि। पृष्ठ ४, ५ श्लोक २, ३

३. भवेद्भक्तिरसोऽप्येष मुख्य गौणतया द्विधा।
पंचधाऽपि रतेरैक्यान्मुख्यस्त्वेक इहोदितः॥
सप्तधाऽत्र तथा गौण इति भक्तिरसोऽष्टधा॥
हरिभक्तिरसामृतसिन्धु। द०,वि०। ५।६५, ६६.

४. मुख्यस्तु पंचधा शान्तः प्रीतिः प्रेयांश्च वत्सलः।
मधुरश्चेत्यमी ज्ञेया यथा पूर्वमनुत्तमाः॥
ह० भ० र०। द० वि०। ५।६६, ६७

५. हास्योऽद्भुतस्तथा वीरः करुणो रौद्र इत्यपि।
भयानकः स बीभत्स इति गौणश्च सप्तधा॥
एवं भक्तिरसो भेदाद् द्वयोर्द्वादशधोच्यते। ह० भ० र०। द० वि०। ५।६७, ६८.

मुख्य भक्ति रस के उपभेदों का विवरण इस प्रकार है : —

१. शान्त भक्तिरस—विभावादि के द्वारा शान्ति रूप स्थायीभाव शमवानों के आस्वाद का विषय होकर शान्त भक्तिरस की संज्ञा धारण करता है।[1] इस रस में योगियों को प्रायः आत्मसाक्षात्कारात्मक निर्विशेष ब्रह्मानन्द सहोदर सुख प्राप्त होता है।[2] इस रस में शान्ति नामक स्थायीभाव होता है।[3]

२. प्रीति भक्तिरस अथवा दास्य भक्तिरस—अनुरूप विभावादि के द्वारा भक्तों के हृदय में आस्वादन-योग्यता को प्राप्त हुई प्रीति ही प्रीति भक्तिरस कहलाती है।[4] भक्तों के दास रूप अथवा लालन करने योग्य होने के कारण यह रस दो प्रकार का होता है[5] :—

१—सम्भ्रम प्रीति भक्तिरस

२—गौरव प्रीति भक्तिरस

प्रीति भक्तिरस का स्थायीभाव सम्भ्रम प्रीति है। प्रभुता के ज्ञान के कारण चित्त में आदर सहित कम्प होता है, उससे अभिन्न प्रीति सम्भ्रम प्रीति कहलाती है।[6]

३. प्रेयान् भक्तिरस अथवा सख्य भक्तिरस—सख्य रूप स्थायीभाव अपने अनुरूप विभावादि के द्वारा सहृदयों के चित्त में पुष्टि को प्राप्त होकर प्रेयान् रस

---

१. वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः शमिनां स्वाद्यतां गतः।
स्थायी शान्तरतिर्धीरैः शान्तभक्तिरसः स्मृतः ।। ह० भ० र० प० वि० ११८

२. प्रायः स्वसुखजातीयं सुखं स्यादत्र योगिनाम्।
किन्त्वात्मसौख्यमघनं घनं त्वीशमयं सुखम् ।। ह० भ० र० प० वि० ११५

३. अत्र शान्ति रतिः स्थायी—। ह० भ० र० प० वि० ११२४

४. आत्मोचितैर्विभावाद्यैः प्रीतिरास्वादनीयताम्।
नीता चेतसि भक्तानां प्रीतभक्तिरसो मतः ।।
हरिभक्तिरसामृतसिन्धु।पश्चिम विभाग। २।३

५. अनुग्राह्यस्य दासत्वाल्लाल्यत्वादप्ययं द्विधा।
भिद्यते सम्भ्रमप्रीतो गौरव प्रीत इत्यपि ।।
हरिभक्तिरसामृतसिन्धु।पश्चिम विभाग। २।४

६. सम्भ्रमः प्रभुताज्ञानात्कम्पश्चेतसि सादरः।
अनेनैक्यं गता प्रीतिः सम्भ्रम प्रीतिरुच्यते ।।
हरिभक्तिरसामृतसिन्धु।पश्चिम विभाग। २।४०

(प्रेयोभक्तिरस) कहलाता है।[1] दो समान व्यक्तियों की भयरहित तथा विश्वासरूपिणी जो रति होती है, वही सख्य नामक स्थायीभाव है।[2]

४. वत्सल भक्तिरस या वात्सल्य भक्तिरस—विभावादि के द्वारा पुष्टि को प्राप्त हुआ वात्सल्यरूप स्थायीभाव वत्सल भक्तिरस कहलाता है।[3] अनुकम्पा करने वाले (गुरुजनों) की अनुकम्पनीय के प्रति भयादि से रहित जो रति होती है उसी को वात्सल्य नामक स्थायी भाव कहते हैं।[4]

५. मधुर भक्तिरस या माधुर्य भक्तिरस—अपने अनुरूप विभावादिकों के द्वारा सहृदयों के हृदय में पुष्टि को प्राप्त मधुरारति को मधुर भक्तिरस कहते हैं।[5] माधुर्य भक्तिरस या मधुर भक्तिरस के स्थायीभाव का नाम प्रियता है। भगवान् कृष्ण की कान्त भाव से उपासना करना माधुर्य भक्ति का लक्षण है।[6] यह भक्ति की चरमावस्था है, क्योंकि इस अवस्था में संकोच और सभी प्रकार की मर्यादाओं का अभाव हो जाता है। भगवान् की अबाध गति से निरन्तर सेवा होती है, तथा सुख का आस्वादन प्रगाढ़रूप से होता है। यह मधुराभक्ति लौकिक दाम्पत्य रस से सर्वथा भिन्न होती है। लौकिक रस के जितने सम्बन्ध है, वे सब स्वार्थमूलक होते हैं. किन्तु भगवान

---

१. स्थायी भावो विभावाद्यैः सख्यमात्मोचितैरिह।
   नीतश्चित्ते सतां पुष्टिं रसः प्रेयानुदीर्यते॥
   हरिभक्तिरसामृतसिन्धु।पश्चिम विभागे। ३।१

२. प्रायः समानयोरत्र सा सख्यं स्थायि शब्दभाक्।
   हरिभक्तिरसामृतसिन्धु।पश्चिम विभागे। ३।५५

३. विभावाद्यैस्तु वात्सल्यं स्थायी पुष्टिमुपागतः।
   एष वत्सलनामात्र प्रोक्तो भक्तिरसो बुधैः॥
   हरिभक्तिरसामृतसिन्धु।दक्षिण विभागे। ४।१

४. सम्भ्रमादिच्युता या स्यादनुकम्प्येऽनुकम्पितुः।
   रतिः सैवात्र वात्सल्य स्थायीभावो निगद्यते॥
   हरिभक्तिरसामृतसिन्धु।पश्चिम विभागे। ४।२४

५. आत्मोचितैर्विभावाद्यैः पुष्टिं नीता सतां हृदि।
   मधुराख्यो भवेद्भक्तिरसोऽसौ मधुरारतिः॥
   हरिभक्तिरसामृतसिन्धु।पश्चिम विभागे। ५।१

६. स्थायीभावो भवत्यत्र पूर्वोक्ता मधुरारतिः।
   राधामाधवयोरेष क्वापि भावैः कदाप्यसौ।
   सजातीय विजातीय र्नैव विच्छिद्यते रतिः॥
   हरिभक्तिरसामृतसिन्धु।पश्चिम विभागे। ५।६,७

के प्रति होने वाली मधुरोपासना में अलौकिक प्रेम होता है, तथा इसमें परसुख मूलकता की भावना रहती है। डॉ० बड़थ्वाल का मत है कि वासनायें स्वतः भली या बुरी नहीं होती हैं। उनका भला या बुरा होना उनके आलम्बन पर निर्भर है। जो वासना पुत्र, कलत्र, धन आदि की ओर आकर्षित होने पर मोह कहलाती है और बन्धन का का कारण बनती है; वही वासना भगवान् के प्रति उन्मुख होने पर उपासना या भक्ति कहलाती है और जीव की मुक्ति का कारण बनती है।[1]

भक्तिरसायन में भक्तिरस के निम्नांकित दो मुख्य भेद बतलाये गये हैं—

१. अमिश्रित भक्तिरस

२. मिश्रित भक्तिरस

(१) अमिश्रित भक्तिरस—इसमें स्थायीभाव के रूप में केवल भगवद्रति की व्यंजना की जाती है। इसमें कामरति और हास आदि का मेल नहीं होता। विशुद्ध, वत्सल और प्रीति—ये तीन अमिश्रित भक्तिरस हैं।[2]

(२) मिश्रित भक्तिरस—इसमें भगवद्रति के साथ कामरति और हास आदि भावों का मिश्रण रहता है। शृंगार, करुण, हास्य, भयानक, अद्भुत, युद्धवीर और दानवीर—ये सात मिश्रित भक्तिरस कहलाते हैं।[3]

हरिभक्तिरसामृतसिन्धु और भक्तिरसायन, इन दोनों ग्रन्थों में भक्तिरस का विवेचन और वर्गीकरण किया गया है। किन्तु दोनों ग्रन्थों में भक्तिरस के वर्गीकरण में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है, जो—निम्नांकित सारणी से स्पष्ट हो जाती है—

ग्रन्थ	भक्तिरस के भेद	
हरिभक्तिरसामृतसिन्धु	१. मुख्य भक्तिरस	२. गौण भक्तिरस
	(१) शान्त (२) प्रीति (३) प्रेयान् (४) वत्सल (५) मधुर	(१) हास्य (२) अद्भुत (३) वीर (४) करुण (५) रौद्र (६) भयानक (७) बीभत्स
भक्तिरसायन	१. अमिश्रित भक्तिरस	२. मिश्रित भक्तिरस
	(१) विशुद्ध (२) वत्सल (३) प्रीति	(१) शृंगार (२) करुण (३) हास्य (४) भयानक (५) अद्भुत (६) युद्धवीर (७) दानवीर

१. हिन्दी साहित्य में उपासना का स्वरूप—कल्याण (६।४) पृष्ठ ८३८

२ विशुद्धो वत्सलः प्रेयानिति भक्तिरसास्त्रयः।
रसान्तरामिश्रितास्ते भवन्ति परिपुष्कलाः ॥ भक्तिरसायन २।३५

३. शृंगारःकरुणो हास्यस्तथा प्रीतिभयानकः।
अद्भुतो युद्धवीरश्च दानवीरश्च मिश्रिताः ॥ भक्तिरसायन २।३३

तुलसी साहित्य में भक्तिरस

अमिश्रित भक्तिरस—

१. विशुद्ध भक्ति रस—परानन्दमय भगवान् के माहात्म्य से उत्पन्न हर्ष के कारण द्रुतचित्त की भगवद्विषयक शुद्ध सात्त्विकी रति ही विशुद्ध भक्तिरस का स्थायीभाव है।[1]

कवितावली के निम्नांकित पद में विशुद्ध भक्तिरस की अभिव्यञ्जना हुई है :—

सियाराम सरूप अगाध अनूप बिलोचन मीनन को जलु है।
श्रुति राम कथा मुख राम को नाम हिएँ पुनि रामहि को थलु है॥
मति रामहि सों गति रामहि सों रति राम सों रामहि को बलु है।
सबकी न कहै तुलसी के मतें इतनो जगजीवन को फलु है॥

कवितावली। ७।३७

२. प्रीति या दास्य भक्तिरस—प्रेयान् भक्ति का स्थायीभाव प्रेयोरति है। सेव्य सेवक भाव से की गयी भगवद्विषयक रति को प्रेयोरति कहते हैं। रूपगोस्वामी ने प्रेयान् भक्तिरस को प्रीति भक्तिरस कहा है।[3] गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति मुख्य रूप से इसी कोटि की है। उन्होंने लिखा है कि सेवक सेव्य भाव के बिना जीव का कल्याण नहीं हो सकता—

सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि।
भजिअ रामपद पकंज, अस सिद्धान्त बिचारि॥

रामचरितमानस ७।११६

विनयपत्रिका में मूलतः दास्य भक्तिरस के दर्शन होते हैं। विनयपत्रिका की भावभूमि का केन्द्रबिन्दु निम्नांकित पंक्तियों में समाहित है—

राम सो बड़ो है कौन मोसो कौन छोटो।
राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो॥ विनयपत्रिका। ७२

---

१. तज्जन्यानां द्रुतो मुद्रा रतिर्गोविन्द गोचरा।
एतदन्त हि शास्त्रेषु साधनाम्नानभिव्यते॥ भक्तिरसायन-२।१३

२. सेव्यसेवक भावेन प्रेयोरतिरितीर्यते। भक्तिरसायन २।११

३. आत्मोचितैर्विभावाद्यैः प्रीतिरास्वादनीयताम्।
नीता चेतसि भक्तानां प्रीतभक्तिरसो मतः॥
अनुग्राह्यस्य दासत्वाल्लाल्यत्वादप्ययं द्विधा।
भिद्यते सम्भ्रमप्रीतो गौरवप्रीत इत्यपि॥

हरिभक्तिरसामृतसिन्धु। पश्चिम विभागे। २ लहरी। ३,४

इस केन्द्रीय भाव की परिधि ही व्यापक होते होते शक्ति-शील-सौन्दर्य की राशि भगवान् राम के महत्त्व, पतितपावनत्व एवं अनन्त भक्तवत्सलत्व तथा तुलसी के लघुत्व, दैन्य एवं अनन्यत्व के नाना रूपों में फैल गयी है।[1]

(३) वत्सल भक्तिरस—वत्सल भक्तिरस का स्थायी भाव ईश्वर विषयक रति है।[2] वत्सल भक्तिरस में भगवान् वात्सल्य के विषयालम्बन ही हो सकते हैं, आश्रय नहीं। तुलसी के कुछ पात्र भगवान् के बालरूप की उपासना करते हैं :—

> इष्टदेव मम बालक रामा। सोभा बपुष कोटि सत कामा॥
> निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करौं उरगारी॥
> लघु बायस बपु धरि हरि संगा। देखौं बाल चरित बहुरङ्गा॥
> लरिकाईं जहँ जहँ फिरहिं, तहँ तहँ संग उड़ाउँ।
> जूठन परइ अजिर महँ, सो उठाइ करि खाउँ॥

रामचरितमानस। ७।७५

शान्त भक्तिरस—हरिभक्तिरसामृत सिन्धु में शान्ति भक्तिरस को मुख्य भक्ति रस माना गया है। रामचरितमानस मे शान्तभक्तिरस की निष्पत्ति हुई है। बनवासी राम ने वाल्मीकि मुनि से अपने लिए निवास योग्य स्थान की जिज्ञासा की। उनके प्रश्न के उत्तर में वाल्मीकि मुनि ने चौदह निवास स्थान बतलाये। इस प्रसंग में उन्होंने ज्ञानी भक्तों की भगवद् विषयक रति का उल्लेख किया है, जो शान्त भक्ति रस का सुन्दर निदर्शन है—

> सब कर मागहिं एक फलु, राम चरन रति होउ।
> तिन्ह कें मन मंदिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोउ॥

रामचरितमानस। अयोध्या०। १२६

> जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु।
> बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेहु॥

रामचरितमानस। २।१३१

तुलसी की भक्ति में शान्त सहज रूप से अन्तर्निहित है। निम्नांकित पदों में शान्त भक्तिरस की निष्पत्ति हुई है—

> हे हरि, यह भ्रम की अधिकाई।
> देखत, सुनत, कहत, समुझत संशय सन्देह न जाई॥
> ....

---

१. हिन्दी वैष्णव—साहित्य में रस-परिकल्पना, पृष्ठ ३६०

२. पाल्य पालक भावेन स वत्सलरतिर्भवेत्। भक्तिरसायन २।११

तुलसिदास सब विधि प्रपंच जग जदपि झूठ श्रुति गावै ।
रघुपति-भगति संत संगति बिनु को भवत्रास नसावै ।।

विनयपत्रिका : १२१

ऐसी मूढ़ता या मन की ।
परिहरि रामभगति सुरसरिता आस करत ओस कन की ।। विनयपत्रिका । ९०

इस प्रकार के पदों में मनः प्रबोध, विवेक एवं शम की गहरी अनुभूति होती है, किन्तु इस प्रशान्त अनुभूति का साक्षात् सम्बन्ध भगवत्प्रेम की अनुभूति से होता है। इस प्रकार की अनुभूति शान्त भक्तिरस के अन्तर्गत होती है।

भक्ति और शान्तरस में अन्तर

शान्त रस का स्थायी भाव शम अर्थात् तत्त्वज्ञान या आत्मज्ञान है : काम-स्पृहा रहित वशीकार नामक वैराग्य के द्वारा द्रुतचित्त के प्रकाश को शम कहते हैं—

वशीकाराख्य वैराग्यं यत् कामास्पृहताऽऽत्मकम् ।
तेन द्रुतस्य चित्तस्य प्रकाशः शम उच्यते ।। भक्तिरसायन २।२४

भक्तिरस का स्थायीभाव भगवद्विषयक रति है—

स्थायीभावोऽत्र सम्प्रोक्तः श्रीकृष्ण विषया रतिः । हरिभक्तिरसामृत सिन्धु २।५।२

शान्तरस विरागमूलक है, जबकि भक्तिरस अनुरागमूलक है। पहले का आलम्बन है संसार की असारता एवं परमात्मा का चिन्तन; और दूसरे का आलम्बन भगवान् तथा भक्त है। तुलसी साहित्य में जहाँ-जहाँ राम का निरूपण हुआ है, वहाँ-वहाँ उसका पर्यवसान भक्ति में ही हुआ है।[1]

ख—भगवान्

'ईश् ऐश्वर्ये' धातु से वरच् प्रत्यय का योग करने पर ईश्वर शब्द निष्पन्न होता है। ईश्वर का अर्थ होता है, ऐश्वर्य से युक्त। ईश्वर संकल्पमात्र से ही सम्पूर्ण जगत् का उद्धार कर सकते हैं।[2] ईश्वर में षड् भग होते हैं; अतः उन्हें भगवान् कहते हैं। ये षड् भग हैं; धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य और मुक्ति। इन भगों की आंशिक स्थिति जीवों में भी होती है; किन्तु भगवान् में ये सभी भग निरतिशय होते हैं।[3]

---

१. तुलसी-दर्शन-मीमांसा—डॉ० उदयभानु सिंह, पृष्ठ २८१-२८६
२. ईशनशील इच्छामात्रेण सकल जगदुद्धरणक्षमः ईश्वरः ।
३. ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ।। विष्णु पुराण ६।५।७४
ज्ञान शक्ति बलैश्वर्य वीर्यतेजांस्यशेषतः ।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ।। अहिर्बुध्न्यसंहिता ५।३।२, ३

भगवान् को सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय, जीवों के जन्म और मरण तथा विद्या माया और अविद्या माया का ज्ञान होता है।[1]

जब भक्त भगवान् का प्रेमपूर्वक कीर्तन करते हैं; तब वे शीघ्र ही प्रकट होकर भक्तों को दर्शन देते हैं।[2] महर्षि शांडिल्य का मत है कि राम, कृष्ण आदि अवतारों के प्रति की गयी भक्ति मुक्तिदायिनी होती है।[3] भगवान् के जन्म और कर्म; दोनों दिव्य होते हैं।[4]

भगवान् के अवतार

अवतार शब्द अव उपसर्ग पूर्वक 'तृप्लवनतरणयोः' धातु से घञ् प्रत्यय का योग करने पर निष्पन्न होता है। अवतार शब्द का धातुगत अर्थ होता है, उतर कर नीचे आना।[5] अव् धातु से अच् प्रत्यय का योग करने पर अव शब्द बनता है। अव् धातु अनेकार्थक है।[6] अतः अव् धातु के मुख्य अर्थ ग्रहण करने पर अवतार शब्द का अर्थ होगा, करुणावरुणालय[7] भगवान् का भक्तों से प्रेम होने के कारण उनकी रक्षा के लिए वैकुण्ठ से उतरकर[8] मृत्युलोक में जन्म धारण करना। भगवान् का अवतार उनकी इच्छा से होता है।[9] भगवान् के अवतार धारण करने के प्रयोजनों का उल्लेख करते हुए गीताकार ने कहा है कि साधु पुरुषों की रक्षा करने तथा धर्म की स्थापना करने के लिए भगवान् अवतार धारण करते है।[10] शास्त्रों में भगवान के अवतार का एक

---

१. उत्पत्तिं प्रलयं चैव जीवानामागतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥ विष्णु पुराण ६।५।७८

२. स कीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति च भक्तान्। शांडिल्य भक्तिसूत्र। ८०

३. एवं प्रसिद्धेषु। शांडिल्य भक्तिसूत्र। ५५

४. तच्च दिव्यं स्वशक्तिमात्रोद्भवात्। शांडिल्य भक्तिसूत्र। ४८
जन्म कर्म च मे दिव्यम्। गीता ४।९

५. अवतरणं अवतारः। अवतरण वैकुण्ठादत्रागमनम्। सुबोधिनी १।१।२ पर टिप्पणी
अवेतृस्त्रोर्घञ्। अष्टाध्यायी ३।३।१२० अवतारः कूपादेः।

६. अव् रक्षणगतिकान्तिप्रीति तृप्त्यवगम प्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचन क्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्यालिङ्गनहिंसादान भागवृद्धिषु। सिद्धान्त कौमुदी—धातु संख्या ६००

७. मुख्यं तस्य हि कारुण्यम्। शांडिल्य भक्तिसूत्र। ४९
तादृशकरुणाजन्येच्छाया एव फलेच्छा न हेतुः। भक्ति चन्द्रिका-पृष्ठ १२६

८. अवतारो नाम वैकुण्ठस्थानादिहागमनम्। तत्त्वार्थदीप निबन्ध पृष्ठ २३८ में उद्धृत

९. इच्छा गृहीताभिमतोरुदेहः संसाधिताशेष जगद्धितो यः। विष्णु पुराण ६।५।८४

१०. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ गीता ४।८

प्रयोजन लीला का विस्तार करना भी बतलाया गया है।[1] भागवत के अनुसार प्रभु का अवतार जीवों का कल्याण करने के लिए होता है।[2]

वेदों में अवतारवाद

वैदिक संहिताओं में 'अवतार' शब्द का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु अवतृ से बनने वाले 'अवतारी' 'अवत्तर' और अवतर आदि शब्दों के प्रयोग मिलते हैं। निम्नांकित मंत्र में 'अवतारी' शब्द का प्रयोग हुआ है—

आभिर्विश्वा अभियुजा विषूचीरार्याय विशोऽवतारीर्दासीः। ऋग्वेद ६।२५।२

सायण के मत से यहाँ 'अवतारी' का अर्थ विन्न है—

यज्ञादि कर्म कुर्वते यजमानायावतारीः विनाशाय।

अवत्तर शब्द का प्रयोग अथर्ववेद के निम्नांकित मंत्र में हुआ है—

उपयामुप वेदसम् अवत्तरो नदीनाम्।

अग्ने पित्तमपामसि। अथर्व० १८।३।५

सायण के अनुसार रक्षण में समर्थ को अवत्तर कहा जाता है—

अवत्तरः अतिशयेन अवन् रक्षणसमर्थः सारभूतांशोविद्यते।

अवतर इति अवरक्षणे इत्यस्मात् लट्शत्रादेशः। ततः प्रकर्षार्थोतरप्।

ऋग्वेद में 'अवतरम्' पद का प्रयोग हुआ है—

अवतरमथ क्षुद्रमिव स्रवेत्। ऋ० १।१२९।६

भाष्यकार सायण के मत से यहाँ अवतरम् का अर्थ 'अत्यन्त निकृष्ट' है—

अवतरम् अत्यन्त निकृष्टम्।

शुक्ल यजुर्वेद में भी अवतर शब्द का प्रयोग हुआ है—

उप ज्मन्नुप वेतसेऽवतरः नदीष्वाः। यजु० १७।६

महीधर भाष्य के अनुसार अवतर का अर्थ आगमन होता है—

पृथिव्यामुपावतर आगच्छ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पौराणिक साहित्य में अति प्रसिद्ध अवतार शब्द के अर्थ का मूल वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है। वेदों में कुछ अवतारों के सम्बन्ध में सूक्ष्म रूप में संकेत उपलब्ध होते हैं।

---

१. लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्। वेदान्त दर्शन २।१।३३
लीलानाम विलासेच्छा। आनन्दे तदुल्लासेन कार्यं जननां सदृशी क्रिया क्वाचिदुत्पद्यते। सुबोधिनी (भागवत तृतीय स्कन्ध)

२. बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य।
सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि सतामभद्राणि मुहुः खलानाम्॥ भागवत १०।२।२९

मत्स्यावतार—शतपथ ब्राह्मण (१।६।३।१-६) में मनु की कथा आयी है। जब अत्यधिक बाढ़ में मनु की नौका डूब रही थी, तब मनु ने मत्स्य के सींग में नौका को बांध दिया था और इस प्रकार मत्स्य ने जल प्रलय से मनु की रक्षा की थी—

मनवे ह वै प्रातः। अवनेग्यमुदकमाजहुर्यथेदं पाणिभ्यामवने जनायाहरन्त्येवं
तस्यावने निजायस्य मत्स्यः पाणी आपेदे। शतपथ ब्राह्मण १।६।३।१

स हो वाच। अपीपरं वै त्वा वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व तं तु त्वा
मा गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद्यावद्यावदुदकं.................
.........गिरेर्मनोरव सर्प्पणमित्यौपौ ह ताः सर्व्वाः प्रजा
निरुवाहाथेह मनुरे वैकः परिशिशिषे। शतपथ ब्राह्मण १।६।३।६

वराहावतार—वैदिक साहित्य में वराह अवतार के सम्बन्ध में निम्नांकित उद्धरण प्राप्त होते हैं—

१—प्रजापति ने वराह का रूप धारण कर जल के भीतर निमज्जन किया। वे पृथ्वी को नीचे से ऊपर ले आये—

वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय विजिहीते मृगाय। अथर्व० १२।१।४८
स वराहो रूपं कृत्वा अप्सुन्यमज्जत्। स पृथ्वीमधः आच्छंत्।
तैत्तिरीय ब्राह्मण १।१।६

२—पृथ्वी के स्वामी प्रजापति वराह का रूप धारण कर पृथ्वी को नीचे से ऊपर ले आये—

इतीयती ह वा इयमग्रे पृथिव्यास प्रादेशमात्री तामेमूप इति वराह उज्जघान। सोऽस्याः पतिः। शतपथ ब्राह्मण १४।१।२।११

३—वराह के द्वारा पृथ्वी का उद्धार हुआ—

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
भूमिर्धेनुर्धरणी लोक धारिणी इति॥ तैत्तिरीय आरण्यक १।१।३०

कर्मावतार—शतपथ ब्राह्मण में कूर्मावतार का सूत्र उपलब्ध होता है—

स यत् कूर्म्मो नाम। एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत। यत असृजत अकरोत् तत्, यत् अकरोत् तस्मात् कूर्म्मः। कश्यपो वै कूर्म्मः। तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्यः इति। शतपथ ब्राह्मण ७।५।१।५

तैत्तिरीय आरण्यक में भी कूर्मावतार का संकेत मिलता है—

अन्तरतः कूर्मभूतः तमब्रवीत् मम वै त्वङ्मांसात् समभूत्। नेत्यब्रवीत् पूर्वमेवाहमिहासम्। इति तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम्। स सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपाद् भूत्वोदतिष्ठत्। तैत्तिरीय आरण्यक १२३।३

नृसिंहावतार—तैत्तिरीय आरण्यक में नृसिंह अवतार का संकेत मिलता है :—

वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि तन्नो नरसिंहः प्रचोदयात् ।

तैत्तिरीय आरण्यक १।१।३१

वामनावतार—ऋग्वेद में कहा गया है कि विष्णु ने वामनावतार में तीनों लोकों को नापा था। उन्होंने तीन बार पाद-निक्षेप किया था—

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । ऋ० १।२२।१८

यदा ते विष्णु रोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे । ऋ० ८।१२।२७

तैत्तिरीय संहिता (११।१।३।१) में वामन द्वारा तीनों पगों से तीनों लोकों को जीत लेने का उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि विष्णु ने अकेले ही एकत्र अवस्थित और अतिविस्तीर्ण लोकत्रय को तीन बार के पदक्रमण द्वारा मापा था—

प्रविष्णवे शूषमेतुमन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।

य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ।। ऋग्वेद १।१५४।३

शतपथ ब्राह्मण में वामन और उनको यज्ञ में प्राप्त होने वाली भूमि का वर्णन किया गया है :—

वामनो ह विष्णुरास । तद्देवा न जिहीडिरे महद्वैनोऽदुर्येनो यज्ञसम्मितमदुरिति ।

शतपथ ब्राह्मण १।२।५।५

श्रीरामावतार—ऋग्वेद में दुःशीम, पृथवान् और वेन के साथ एक अतिशय प्रतापी नरेश के रूप में श्रीराम का उल्लेख हुआ है—

प्रतद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु ।

ये युक्त्वाय पंचशतास्मयु पथा विश्राव्येषाम् ।। ऋ० १०।९३।१४

अर्थात् जैसे सब देवता पाँच सौ रथों में घोड़े जोतकर यज्ञ में आने के लिए मार्ग में आते हैं; वैसे ही मैंने दुःशीम, पृथवान, वेन और बली राम आदि धनपति राजाओं के पास उनके प्रशंसायुक्त स्तोत्र का पाठ किया है।

अगले मंत्र में उपर्युक्त नरेशों की दानशीलता की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि इन राजाओं से तान्व, पार्थ्य और मायव आदि ऋषियों ने शीघ्र ही सतहत्तर गायें माँगी—

अधीन्न्वत्र सप्तति च सप्त च ।

सद्यो दिदिष्ट तान्वः सद्योदिदिष्ट पार्थ्यः सद्योदिदिष्ट मायवः ।

ऋग्वेद १०।९३।१५

ऋग्वेद के पूर्वोद्धृत मंत्रों के ऋषि पृथु के पुत्र तान्व हैं। इन मंत्रों का सायण भाष्य निम्नांकित है—

(१) ये देवाः पंच शता शतानि रथान्युक्त्वा अश्वैर्युक्तानि अश्वैर्युक्तान्मद्यज्ञम-स्मत्कामाः सन्तः पथा यज्ञमार्गेण गच्छन्ति तेषामेतां देवानां विश्राव्य देवानां लोके नाना

विशेषेण श्रावकगुण युक्तं तत्स्तोत्रं दुःशीमे दुःशीमनाम्नि पृथवाने । पृथवानः पृथिः । तस्मिन् वेने चासुरे बलवति रामे चैवपु राजपु । प्रवोचं । प्रब्रवीमि । प्रख्यापयामीत्यर्थः । मघवत्स्वन्येषु धनवत्सु च प्रख्यापयामीत्यर्थः ।

ऋ० १०।६३।१४ का सायण भाष्य

(२) अत्रैव राजसु तान्वा नार्मापिर्गवा सप्त च सप्तति च नु क्षिप्रं सद्य इत् सद्य एवाधि दिदिष्ट । किंच पार्थो नाम युवनाश्वनामकस्य कुले पृथोः पुत्रः कश्चित्सद्य एव नयां सप्तसप्तिमधि दिदिष्ट । ययाचे । किंच मायवोऽपि सद्य एवाधि दिदिष्ट ।

ऋ० १०।९३।१५ का सायण भाष्य

ऋग्वेद के निम्नांकित मंत्र में 'रामम्' शब्द देखकर कतिपय विद्वान् सम्पूर्ण रामकथा मूल रूप खोजने का प्रयास करते हैं—

भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ।। ऋग्वेद १०।३।३

परन्तु मेरे मत से इस मंत्र में राम नामक किसी भी व्यक्ति की कथा नहीं है। यहाँ राम का अर्थ अन्धकार है, जैसा कि इस मंत्र के सायण भाष्य से स्पष्ट है—

भद्रो भजनीयः कल्याणो भद्रया भजनीयया दीप्तयोषसा वा सचमानः सेव्यमानः संगच्छमानो वाग्निरागात् । आजगाम । गार्हपत्यादाहवनीयमागच्छति । ततः पश्चाज्जारो जरयिता शत्रूणां सोऽग्निः स्वसारं स्वयं सारिणीं भगिनीं बागतामुप समभ्येति । अभिगच्छति तथा सुप्रकेतैः सुप्रज्ञानैर्द्युभिर्दीप्तैस्तेजोभिः सह वितिष्ठन् सर्वतो वर्तमानः सोऽग्नी रुशद्भिः श्वेतैर्वर्णैर्वार केरात्मीयैस्तेजोभी रामं कृष्ण शार्वरं तमोऽभ्यस्थात् । सायं होम कालेऽभिभूय तिष्ठति । ऋ० १०।३।३ का सायण भाष्य

इस सूक्त के देवता अग्नि हैं। इसमें अग्नि का वर्णन किया गया है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी राम का उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में अंशुग्रह यज्ञ के सम्बन्ध में उपतस्विन् के पुत्र औपतस्विनि राम के मत का उल्लेख किया गया है। ये राम याज्ञवल्क्य के समकालिक थे—

तदु होवाच रामऽऔपतस्विनिः । काममेव प्राण्याहकाम पुदन्याद्यद्धे तूष्णीं जुहोति तदेवैनं प्रजापतिं करोतीति । शतपथ ब्राह्मण ४।५।३।७

ऐतरेय ब्राह्मण (७।२७-३४) में जनमेजय के समकालिक भृगुवंशी श्यापर्ण कुल के ब्राह्मण भार्गवेय राम का उल्लेख हुआ है।

जैमिनीय ब्राह्मण (३।७।३।२ और ४।६।१।१) में शंख शात्यायनि आत्रेय के शिष्य और शंख बाभ्रव्य के शिक्षक तथा क्रतुजात एवं व्याघ्रपद् नामक आचार्यों के वंशज क्रातुजातेय वैयाघ्रपद्य राम का एक दार्शनिक के रूप में उल्लेख किया गया

है।[1] तैत्तिरीय आरण्यक में सायण के मत से रमणीय पुत्र के अर्थ में राम शब्द का प्रयोग किया गया है —

संवत्सरं न मांसमश्नीयात्। न रामामुपेयात्। न मृण्मयेन पिबेत्। नास्य राम उच्छिष्टं पिबेत्। तेज एव तत्संश्यति। तैत्तिरीय आरण्यक ५।८।१३

इसके अतिरिक्त जामदग्नि राम नामक एक मंत्रद्रष्टा ऋषि भी हैं, जो ऋग्वेद ६१६५ एवं ६१६७ के मंत्रद्रष्टा हैं—

किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लिखित औपतस्विनि राम, मार्गवेय राम और क्रातुजातेय वैयाघ्रपद्य राम तथा मंत्रद्रष्टा जामदग्नि राम का रामकथा के नायक दाशरथि राम से कोई सम्बन्ध नहीं है।

सीता — ऋग्वेद के निम्नांकित मन्त्रों में कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में 'सीता' शब्द का उल्लेख किया गया है—

अर्वाची सुभगे भवसीते वन्दामहे त्वा।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ।। ऋ० ४।५७।६

अर्थात् हे सौभाग्यवती सीते ! तुम हमारी ओर अभिमुख हो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हम लोगों को सुन्दर धन प्रदान करो, इसीलिए हम तुम्हारी वन्दना करते हैं।

इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषानु यच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ।। ऋ० ४।५७।७

अर्थात् हे इन्द्र देव ! आप सीताधार (लांगल पद्धति) काष्ठ को ग्रहण करें। पूषा उस सीता को नियमित करें। वे उदकवती द्यौ संवत्सर के उत्तर में सत्य-दोहन करें।

इन्द्रः देवः सीतां सीताधारकाष्ठं निगृह्णातु। तां सीतां पूषा देवः अनु यच्छतु नियमयतु। सा द्यौः पयस्वती उदकवती दुहां दुह्यात्। उत्तरामुत्तरां समाम् उत्तरमुत्तरं संवत्सरम्। ऋ० ४।५७।७ का सायण भाष्य

ऋग्वेद के निम्नांकित मन्त्र में मार्ग के अर्थ में 'सीता' शब्द प्रयुक्त हुआ है —

मुमुक्ष्वो मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः।
असमना अजिरासो रघुष्यदो वातजूता उप युज्यन्त आशवः ।। ऋ० १।१४०।४
रघुद्रुवः क्षिप्रं गच्छन्त्यः कृष्णसीतासः कृष्णमार्गाः।
जुवः जवनशीलाः शीघ्रकारिण्यः स्वव्यापारेषु।
ऋ० १।१४०।४ का सायण भाष्य

---

१. (अ) रामकथा—उत्पत्ति और विकास—पृष्ठ २-३
(ब) प्राचीन चरित्र कोश—पृष्ठ ७२४-७२५

इसके अतिरिक्त अथर्ववेद[1] और शतपथ ब्राह्मण[2] में भी लांगल पद्धति के अर्थ में सीता शब्द का प्रयोग हुआ है। कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय ब्राह्मण (३।३।१०) में प्रजापति की कन्या सीता सावित्री की कथा आयी है। यह सीता सावित्री अंगराग का प्रयोग कर राजा सोम को अपना पति बनाती है।[3] अथर्ववेद (३।१७) के नव मन्त्रों की देवता सीता हैं। किन्तु लांगल पद्धति के अर्थ में प्रयुक्त मंत्रोक्त सीता का जनकात्मजा सीता से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। डॉ० याकोबी रामायण की सीता को वैदिक सीता से अभिन्न मानते हैं। उनके मत से वैदिक काल के देवता इन्द्र रामायण काल तक परिवर्तित होकर राम बन गये हैं।[4] मेरे मत से डॉ० याकोबी का मत अप्रामाणिक है; क्योंकि इन्द्र और राम की एकता किसी भी प्रकार से सिद्ध नहीं हो पाती। वेदों में रामकथा की स्थिति के सम्बन्ध में विद्वानों की दो प्रकार की विचारधारायें हैं। कतिपय विद्वानों के मत से वैदिक मन्त्रों में सम्पूर्ण रामकथा का प्रतिपादन किया गया है[5]; तो दूसरे विद्वान् वेदों में उल्लिखित दशरथ, राम आदि ऐतिहासिक नामों की यौगिक व्याख्या करते हैं। इन विद्वानों के मत से वेदों में ऐतिहासिक व्यक्तियों (दशरथ, राम, कृष्ण आदि) का उल्लेख मानने से वेद की नित्यता समाप्त हो जायेगी।[6] इनका विचार है कि वेदों में प्रयुक्त संज्ञाओं के आधार पर ही परवर्ती व्यक्तियों के नाम रखे गए हैं।[7]

मेरे मत से पूर्वोक्त दोनों विचारधारायें अतिवादी हैं। वेदों के मन्त्रद्रष्टा ऋषि विश्वामित्र[8], वशिष्ठ[9], और जामदग्नि परशुराम[10]; दशरथ और राम के समकालिक

---

१. सीता पर्शवः सिकता ऊ बध्यन्। अथर्ववेद ११।३।१२
२. प्रतीचीं प्रतिमां सीतां कृषति वायुः पुनारिवति सविता…। शतपथ ब्राह्मण १३।८।२।६
चतस्रः सीता यजुषा कृषति। शतपथ ब्राह्मण १३।८।२।७
३. प्राचीन चरित्रकोश—पृष्ठ १०४५
४. कल्याण (५३।६) पृष्ठ २१८ मे उद्धृत
५. मंत्ररामायणम्—श्री नीलकण्ठ
वेदों में रामकथा—पं० रामकुमार दास
६. परन्तु श्रुति सामान्य मात्रम्। मीमांसा दर्शन १।३१
उक्तश्चाऽनित्य संयोगः। मीमांसा दर्शन १।५०
७. सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे।। मनुस्मृति १।२१
८. ऋग्वेद—तृतीय मण्डल
९. ऋग्वेद—सप्तम मण्डल
१०. ऋग्वेद – १०।११०

है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद (१०।९३।१४) में श्रीराम के साथ वेन और पृथवान् का उल्लेख हुआ है। वेन[1] और पृथवान्[2] या पृथु मंत्रद्रष्टा भी हैं। इसी प्रकार ऋ० (१०।११६) के मंत्रद्रष्टा लव हैं। जब वेदों में शन्तनु और देवापि के इतिहास का उल्लेख किया जाता है[3] तब मंत्रोक्त दशरथ[4] और राम[5] को ऐतिहासिक दशरथ और राम का सूचक न मानना न्यायसंगत नहीं है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वैदिक मंत्रों में राम-कथा के सूत्र बीजरूप में वर्तमान हैं।

श्रीकृष्णावतार—वैदिक साहित्य में कृष्ण नाम वाले तीन व्यक्तियों का उल्लेख हुआ है—

१—असुर कृष्ण २—मंत्रद्रष्टा कृष्ण ३—देवकी पुत्र वासुदेव कृष्ण।

असुर कृष्ण—असुर कृष्ण अंशुमती नदी के तट पर विचरण किया करता था।[6] वह दस हजार सैनिकों का स्वामी था। इन्द्र ने बृहस्पति की सहायता से उसकी सेना का विनाश किया[7] और उसकी (असुर कृष्ण की) त्वचा[8] उखाड़कर अंशुमती नदी के तट पर उसका वध कर डाला।[9] उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि वासुदेव कृष्ण का इस असुर कृष्ण से कोई सम्बन्ध नहीं है।

मंत्रद्रष्टा कृष्ण और वासुदेव कृष्ण—ऋग्वेद में एक मंत्रद्रष्टा कृष्ण का उल्लेख हुआ है, जो ऋग्वेद ८।८५, ८।८६, ८।८७, १०।४२, १०।४३ और १०।४४ के मंत्रद्रष्टा ऋषि हैं। अनुक्रमणी का लेखक इन मंत्रद्रष्टा कृष्ण को आंगिरस कृष्ण

१. ऋग्वेद १०।१२३ के ऋषि
२. ऋग्वेद १०।१४८ के ऋषि
३. तत्रेतिहासमाचक्षते । देवापिश्चार्ष्टिषेणः शन्तनुश्च कौरव्यौ भ्रातरौ बभूवतुः । निरुक्त २।३।१
४. चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान्कक्षीवन्तउदमृक्षन्त पज्राः ॥ ऋग्वेद १।१२६।४
५. प्रतद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु ।
ये युक्त्वाय पंचशतास्मयु पथा विश्राव्येषाम् ॥ ऋ० १०।९३।१४
६. द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥ ऋग्वेद ८।९६।१४
७. अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥ ऋग्वेद ८।९६।१३
८. मनवे शासदव्रतान्त्वचं कृष्णामरन्धयत् । ऋ० १।१३०।८
९. अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत्तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥ ऋ० ८।९६।१५

कहता है।[१] ऋषि कृष्ण अश्विद्वय को सोमपान के लिये आमन्त्रित करते हैं।[२] ऋग्वेद में कृष्ण के विश्वक नामक पुत्र का भी उल्लेख किया गया है; जो ऋग्वेद ८।८६ का ऋषि कृष्ण के साथ मन्त्रद्रष्टा है। कृष्णपुत्र ऋषि विश्वक अपने पुत्र विष्णाप्व की स्तुतियों का उल्लेख करता है।[३] अश्विनीकुमारों ने विश्वक के नष्ट पुत्र विष्णाप्व की रक्षा की थी और उसके पिता विश्वक से उसे मिलाया था।[४] ऋग्वेद १।११७ ७ और ऋग्वेद १।११६।२३ में भी विष्णाप्व का उल्लेख हुआ है।[५] कौशीतकि ब्राह्मण में आंगिरस घोर के साथ ही आंगिरस कृष्ण का भी उल्लेख किया गया है।[६] ऐतरेय आरण्यक में कृष्ण हारीत नामक एक उपदेशक का उल्लेख मिलता है, जिसने अपने पुत्र को वाणी रूपी ब्राह्मण के उपासना सम्बन्धी विधान का कथन किया था। तैत्तिरीय आरण्यक में वासुदेव (कृष्ण) का नाम आया है।[८] छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि आंगिरस घोर नामक ऋषि ने देवकी पुत्र कृष्ण को अन्य विद्याओं के विषय में तृष्णाहीन बनाने वाला यज्ञदर्शन सुनाया। इस यज्ञदर्शन में दक्षिणा प्रधान द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा अहिंसा प्रधान यज्ञ का प्रतिपादन किया गया है और तप, दान तथा सत्य को इसकी दक्षिणा कहा गया

---

१. कृष्णो नामांगिरस ऋषिः। ऋ० ८।८५।१ के सायण भाष्य का उपोद्घात।

२. अयं वां कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवसू।
मध्वः सोमस्य पीतये। ऋग्वेद ८।८५।३
शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा।
मध्वः सोमस्य पीतये॥ ऋग्वेद ८।८५।४

३. युवं हि्ष्मा पुरुभुजेममेधतुं विष्णाप्वे ददथुर्वस्य इष्टये।
ता वां विश्वको हवते तनुकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम्॥ ऋग्वेद ८।८६।३

४. कमद्युवं विमदायोहथुर्युवं विष्णाप्वं विश्वकायाव सृजथः। ऋग्वेद १०।६५।१२

५. युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय।
घोषायै चित्पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम्॥ ऋग्वेद १।११७।७
अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय॥ ऋग्वेद १।११६।२३

६. कृष्णो ह तदांगिरसो ब्राह्मणान् छन्दसीय तृतीयं सवनं ददर्श।
कौशीतकि ब्राह्मण ३०।९।७

७. ऐतरेय आरण्यक ३।२।६

८. नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।
तैत्तिरीय आरण्यक १०।१।६

है।[१] गीता में भी द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा ज्ञानमय यज्ञ को उत्तम कहा गया है।[२] डॉ० मुन्शीराम शर्मा के मत से छान्दोग्य उपनिषद् और गीता में उल्लिखित शिक्षाओं के साम्य से सिद्ध होता है कि छान्दोग्य उपनिषद् के देवकी पुत्र कृष्ण गीता के प्रवचन-कर्त्ता वासुदेव कृष्ण ही हैं।[३] इस यज्ञदर्शन को सुनाकर घोर ऋषि ने कृष्ण से कहा कि 'अन्तकाल' में निम्नांकित तीन मन्त्रों का जप करना चाहिये[४] :—

(१) तू अक्षय है।

(२) तू अच्युत है।

(३) तू अति सूक्ष्म प्राण है।

आंगिरस घोर मंत्रद्रष्टा ऋषि थे।[५] डॉ० प्रभुदयाल मीतल का मत है कि आंगिरस घोर महर्षि अंगिरा के पुत्र थे।[६] डॉ० जयशंकर त्रिपाठी का मत है कि महर्षि अंगिरा अग्निविद्या के आचार्य थे। बाद में अग्नि के सभी उपासक आंगिरस कहलाये।[७] इस प्रकार अंगिरा का पुत्र होने के कारण घोर का आंगिरस कहा जाना तर्कसंगत है और अग्निविद्या का उपासक होने के कारण कृष्ण का आंगिरस कहा जाना भी युक्तियुक्त प्रतीत होता है। अतः मेरे मत से घोर और कृष्ण दोनों ही आंगिरस थे। इस प्रकार ऋग्वेद के मन्त्रद्रष्टा आंगिरस कृष्ण की छान्दोग्य उपनिषद् में उल्लिखित देवकी पुत्र कृष्ण से एकता सिद्ध हो जाती है।[८]

ऋग्वेद के निम्नांकित मन्त्र में अर्जुन के साथ कृष्ण का उल्लेख हुआ है :—

अहश्च कृष्णमहरर्जुनञ्च विवर्तेते रजसी वेद्याभिः।

वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि ॥ ऋग्वेद ६।९।१

१. अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः।

छान्दोग्य उप० ३।१७।४

२. श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञात् ज्ञानयज्ञः परन्तप। गीता ४।३३

दानं दमश्चयज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्। गीता १६।१

अहिंसासत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्। गीता १६।२

३. भारतीय साधना और सूर साहित्य—डॉ० मुन्शीराम शर्मा, पृष्ठ १३६

४. तद्धैतद् घोर आंगिरसः कृष्णाय देवकी पुत्रायोक्त्वो

वाचापिपास एव स बभूव सोऽन्तवेलायामेतत्त्रयं

प्रतिपद्येताक्षितमस्यच्युतमसि प्राणसंशितमसीति। छान्दोग्य उप० ३।१७।६

५. ऋग्वेद ८।२६।१० के मंत्रद्रष्टा आंगिरस घोर हैं।

६. ब्रज के धर्म सम्प्रदाय—द्वितीय भाग—पृष्ठ १०

७. साहित्य में क्ष त्र ज्ञ—पृष्ठ ४

८. सूर और उनका साहित्य—डॉ० हरवंश लाल शर्मा—पृष्ठ ११८

है।[१] गीता में भी द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा ज्ञानमय यज्ञ को उत्तम कहा गया है।[२] डॉ० मुन्शीराम शर्मा के मत से छान्दोग्य उपनिषद् और गीता में उल्लिखित शिक्षाओं के साम्य से सिद्ध होता है कि छान्दोग्य उपनिषद् के देवकी पुत्र कृष्ण गीता के प्रवचन-कर्ता वासुदेव कृष्ण ही हैं।[३] इस यज्ञदर्शन को सुनाकर घोर ऋषि ने कृष्ण से कहा कि 'अन्तकाल' में निम्नांकित तीन मन्त्रों का जप करना चाहिये[४] :—

(१) तू अक्षय है।

(२) तू अच्युत है।

(३) तू अति सूक्ष्म प्राण है।

आंगिरस घोर मंत्रद्रष्टा ऋषि थे।[५] डॉ० प्रभुदयाल मीतल का मत है कि आंगिरस घोर महर्षि अंगिरा के पुत्र थे।[६] डॉ० जयशंकर त्रिपाठी का मत है कि महर्षि अंगिरा अग्निविद्या के आचार्य थे। बाद में अग्नि के सभी उपासक आंगिरस कहलाये।[७] इस प्रकार अंगिरा का पुत्र होने के कारण घोर का आंगिरस कहा जाना तर्कसंगत है और अग्निविद्या का उपासक होने के कारण कृष्ण का आंगिरस कहा जाना भी युक्तियुक्त प्रतीत होता है। अतः मेरे मत से घोर और कृष्ण दोनों ही आंगिरस थे। इस प्रकार ऋग्वेद के मन्त्रद्रष्टा आंगिरस कृष्ण की छान्दोग्य उपनिषद् में उल्लिखित देवकी पुत्र कृष्ण से एकता सिद्ध हो जाती है।[८]

ऋग्वेद के निम्नांकित मन्त्र में अर्जुन के साथ कृष्ण का उल्लेख हुआ है :—

अहश्च कृष्णमहरर्जुनञ्च विवर्तेते रजसी वेद्याभिः।

वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि ॥ ऋग्वेद ६।९।१

१. अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः।
छान्दोग्य उप० ३।१७।४

२. श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञात् ज्ञानयज्ञः परन्तप। गीता ४।३३
दानं दमश्चयज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्। गीता १६।१
अहिंसासत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्। गीता १६।२

३. भारतीय साधना और सूर साहित्य—डॉ० मुन्शीराम शर्मा, पृष्ठ १३९

४. तद्धैतद् घोर आंगिरसः कृष्णाय देवकी पुत्रायोक्त्वो
वाचापिपास एव स बभूव सोऽन्तवेलायामेतत्त्रयं
प्रतिपद्येताक्षितमस्यच्युतमसि प्राणसंशितमसीति। छान्दोग्य उप० ३।१७।६

५. ऋग्वेद ८।३६।१० के मंत्रद्रष्टा आंगिरस घोर हैं।

६. ब्रज के धर्म सम्प्रदाय—द्वितीय भाग—पृष्ठ १०

७. साहित्य में क्ष त्र ज्ञ—पृष्ठ ४

८. सूर और उनका साहित्य—डॉ० हरवंश लाल शर्मा—पृष्ठ ११८

किन्तु सायण[1] और यास्क[2] के मत से मंत्रोक्त कृष्ण और अर्जुन क्रमशः रात्रि और दिन के प्रतीक हैं। ऋग्वेद के निम्नांकित मन्त्र में बड़ी सींगों वाली गायों के साथ भगवान् के परमधाम (गोलोक) का संकेत किया गया है :—

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै, यत्र गावो भूरिशृंगा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि ॥ ऋ० १।१५४।६
निम्नांकित मन्त्र में गायों के साथ व्रज का उल्लेख हुआ है :—
गवामपव्रजं वृधि। ऋ० १।१०।७
इसी प्रकार निम्नांकित मन्त्र में यमुना के साथ ही गो और राधा का उल्लेख हुआ है :—
यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे। ऋ० ५।५२।१७
निम्नांकित मंत्रों में धन और अन्न के अर्थ में राधा शब्द का प्रयोग हुआ है[3] :—
सुतं राधानां पते। ऋ० ३।५१।१०
स्तोत्रं राधानां पते। ऋ० १।३०।५

अवतारवाद की दो परम्परायें[4]

भारतीय धार्मिक वाङ्मय में भगवान् के अवतारों की दो परम्परायें प्रसिद्ध हैं; प्रथम दशावतार की परम्परा और द्वितीय चौबीस अवतार की परम्परा। महाभारत[5] और गीतगोविन्द[6] में भगवान् के दशावतारों का उल्लेख किया गया है।

---

१. आहरति पुरुषोऽस्मिन् कर्माणीति अहः। कृष्णं कृष्णवर्णम् एतत्सामानाधिकरण्यादहः शब्दो रात्रिवचनः। तमसा कृष्णवर्णा रात्रिः च अर्जुनं च सौरेण तेजसा शुक्लवर्णम् अहः दिवसश्च रजसी स्व स्वभासा सर्वं जगद्रञ्जयन्तौ वेद्याभिः वेदितव्याभिरनुकूलतया ज्ञातव्याभिः स्वप्रवृत्तिभिः वि वर्तेते विविधं पर्यावर्तेते।
ऋ० ६।९।१ का सायण भाष्य

२. कृष्ण रात्रिः शुक्लं चाहरर्जुनम्। निरुक्त २।६।३-४

३. राधा वल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य—डॉ० विजयेन्द्र स्नातक

४. आधुनिक हिन्दी काव्य में भक्तितत्त्व—पृष्ठ ४६-४७

५. हंसः कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भावो द्विजोत्तम।
वाराहो नरसिंहश्च वामनो राम एव च।
रामो दासरथिश्चैव सात्वतः कल्किरेव च ॥ महाभारत।शान्तिपर्व। ३३९।१०१

६. श्री जयदेव कवेरिदमुदितमुदारम्।
शृणु सुखदं शुभदं भवसारम्।
केशव! धृतदशविधरूपम्, जय जगदीश! हरे। गीत गोविन्द १।११

पुराणों में भगवान के चौबीस अवतारों का उल्लेख किया गया है। श्रीमद्-भागवत पुराण में भगवान् के अवतारों का तीन बार उल्लेख किया गया है। तीनों प्रसंगों में पुरुषावतार को आदि अवतार माना गया है और इसी पुरुषावतार से अन्य अवतारों का होना बतलाया गया है।[1] भागवत के एकादश स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय में सोलह; प्रथम स्कन्ध के तृतीय अध्याय में बाईस और द्वितीय स्कन्ध के सप्तम अध्याय में चौबीस अवतारों का परिगणन किया गया है।[2]

भागवत के द्वितीय स्कन्ध में उल्लिखित चौबीस अवतार निम्नांकित हैं[3] :—
१. चतुःसन २. सूकर ३. नारायण ४ कपिल ५. दत्तात्रेय ६. यज्ञ
७. ऋषभ ८. मत्स्य ९. कच्छप १०. पृथु ११. धन्वन्तरि
१२. नृसिंह १३. वामन १४. परशुराम १५. ध्रुवप्रिय हरि १६. राम
१७. कृष्ण १८. बलराम १९. व्यास २०. बुद्ध २१. कल्कि
२२. हयग्रीव २३. गजेन्द्रोद्धारक हरि और २४. हंस।

ईश्वर की सोलह कलायें

वेद में ईश्वर को षोडशकलात्मक कहा गया है।[4] प्रश्नोपनिषद् में पुरुष की सोलह कलाओं के नाम इस प्रकार बतलाये गए हैं[5] :—

१. प्राण २. श्रद्धा ३. व्योम ४. वायु ५. तेज ६. जल ७. पृथ्वी ८. इन्द्रियाँ ९. मन १०. अन्न ११. वीर्य १२. तप १३. मन्त्र १४. कर्म १५. लोक और १६. नाम। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि यह संवत्सर प्रजापति सोलह कलाओं वाला है। रात्रियाँ ही इसकी पन्द्रह कलायें हैं और सोलहवीं कला ध्रुव (नित्य) है। अमावस्या की रात्रि में प्रजापति इस सोलहवीं कला से इन सब प्राणियों में अनुप्रविष्ट

---

१. जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः।
सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥ भागवत १।३।१
एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम्।
यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः ॥ भागवत १।३।५
२. आधुनिक हिन्दी काव्य में भक्ति तत्व—पृष्ठ ४७
३. भागवत २।७
४. प्रजापतिः प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी। यजुर्वेद ८।३६
महाँ इन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु। यजुर्वेद २६।१०
५. स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः
पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका
लोकेषु च नाम च। एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडश कलाः। प्रश्नोपनिषद् ६।४,५

हो फिर दूसरे दिन प्रातः काल के समय उत्पन्न होता है।[1] इसी उपनिषद् में वित्त को पन्द्रहवीं कला और आत्मा को सोलहवीं कला बतलाया गया है।[2] भागवत में कहा गया है कि सृष्टि के आरम्भ में भगवान् ने सोलह कलाओं से युक्त विराट् पुरुष का का रूप धारण किया।[3] भागवत के इसी श्लोक (१।३।१) की व्याख्या करते हुए श्रीधर स्वामी ने ईश्वर की सोलह कलाओं के अन्तर्गत एकादश इन्द्रियों और पंचभूतों का परिगणन किया है।[4] मेरे मत से उपनिषदों में प्रतिपादित कलायें मानव शरीर की पूर्णता से सम्बन्धित हैं। ईश्वर के अंशावतारों और कलावतारों की आधारभूत ईश्वरीय पोडश कलायें इनसे सर्वथा भिन्न हैं। भागवत के 'जगृहे पौरुष रूपं' (भागवत १।३।१) की व्याख्या करते हुए लघुभागवतामृतम् में कहा गया है कि भगवान् का पुरुषावतार सोलह कलाओं से युक्त था। यद्यपि भगवान् अनन्त शक्तियों के स्वामी हैं, तथापि उनमें से सोलह शक्तियाँ प्रमुख हैं और इन्हीं सोलह शक्तियों को सोलह कलाओं के नाम से उल्लिखित किया जाता है।[5] ये सोलह कलायें निम्नांकित हैं :—

---

१. स एष संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलस्तस्य रात्रय एव पंचदश कला ध्रुवैवास्य षोडशी कला ......सोऽमावास्यां रात्रिमेतया षोडश्या कलया सर्वमिदं प्राण......
ततः प्रातर्जायते। बृहदारण्यक उप० १।५।१४

२. वित्तमेव पंचदश कला आत्मैवास्य षोडशी कला। बृहदारण्यक उप० १।५।१५

३. जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः।
सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया॥ भागवत १।३।१

४. प्रथमं पुरुषावतारमाह जगृहे इति पंचभिः महदादिभिः
सम्भूतं निष्पन्नं एकादशेन्द्रियाणि पंचमहाभूतानीति
षोडशकला अंशा यस्मिन्। भागवत १।३।१ की श्रीधरी टीका

५. षोडशात्र कला यस्मिंस्तत् षोडशकलं मतम्।
ताः षोडशकलाः प्रोक्ता वैष्णवैः शास्त्रदर्शनात्॥
शक्तित्वेन च ता भक्तिविवेकादिषु सम्मताः।
श्रीभूः कीर्तिरिला लीला कान्तिर्विद्येति सप्तकम्।
विमलाद्या नवैश्येता मुख्याः षोडश शक्तयः॥
'लघुभागवतामृतम्। पूर्व खण्ड। श्रीकृष्णामृत खण्ड। ६८, ६६
लघुभागवतामृतम् के टीकाकार श्री बलदेव विद्याभूषण ने 'विमलाद्यानवैश्येता' की व्याख्या करते हुए निम्नांकित कारिका उद्धृत की है :—
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा तथैव च।
प्रह्वी सत्या तथेशानानुग्रहेति नवस्मृताः॥

१. श्री २. भू ३. कीर्ति ४. इला ५. लीला ६. कान्ति ७. विद्या ८. विमला ९. उत्कर्षिणी १०. ज्ञाना ११. क्रिया १२. योगा १३. प्रह्वी १४. सत्या १५. अनुग्रहा १६. ईशाना ।

भगवान के अवतारों का वर्गीकरण करते हुए सात्वततन्त्र में कहा गया है कि अवतारों में ज्ञान, प्रभाव आदि के पूर्ण अथवा अंश रूप में प्रकट होने के आधार पर उन्हें भगवान् का पूर्णावतार या कलावतार कहा जाता है।[1] यद्यपि सभी अवतारों में ज्ञान, गुण, वीर्य आदि वर्तमान रहते हैं; किन्तु किन्हीं-किन्हीं अवतारों के कार्यों में ज्ञान, वीर्य आदि गुणों के पूर्ण दर्शन नहीं होते हैं।[2] अतः उन्हें कलावतार या अंशावतार कहा जाता है। जिस अवतार में ऐश्वर्य, ज्ञान, धर्म, वैराग्य, श्री तथा यश—इनके पूर्ण दर्शन होते हैं, उन्हें पूर्णावतार कहा जाता है।[3] श्रीधर स्वामी का मत है सभी अवतारों में, सर्वज्ञता, सर्वशक्ति सम्पन्नता विद्यमान रहती है; किन्तु इन अवतारों में ज्ञान, क्रिया, सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता आदि दिव्य ईश्वरीय गुणों का जितना प्रकाश या प्राकट्य होता है, इसी प्राकट्य के आधार पर उन्हें पूर्णावतार, अंशावतार या कलावतार कहा जाता है।[4] सात्वततन्त्र के अनुसार पूर्ण शक्ति के चतुर्थ भाग को अंश, सोलहवें भाग को कला और सौवें भाग को विभूति कहा जाता है।[5] सात्वततन्त्र में अवतारों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि कृष्णावतार में विभिन्न कार्यों के रूप में पृथक्-पृथक् रूप से सभी ऐश्वर्यों का प्राकट्य हुआ है। इसीलिए कृष्णावतार को पूर्णावतार कहा जाता है। हयग्रीवादि अवतारों में ऐश्वर्यों के अपेक्षाकृत अल्पतर रूप में प्रकाशित होने से उन्हें अंशावतार कहा जाता है। राम, मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, मन्वन्तरावतार, यज्ञ, हयग्रीव, शुक्ल, ऋषभ, नर-नारायण, दत्तात्रेय, बुद्ध और कल्कि—ये अवतार भगवान् के ज्ञान, कर्म और प्रभाव आदि के अंश से हुए थे, अतएव इन्हें अंशावतार कहा जाता है। कुमार, नारद, व्यास, ब्रह्मरात, भगवान् के ज्ञानांश से युक्त कलावतार तथा गय; पृथु और

१. किन्तु ज्ञाने प्रभावेदैः पूर्णांशांशानुदर्शनात् ।
पूर्णमंशकलाभाग वदन्ति जगदीशितुः ।। सात्वततन्त्र ३।५
२. सन्ति यद्यपि सर्वत्र ज्ञानवीर्यगुणादयः ।
तथापि कार्यतः केचिद्दृश्यन्ते नहि सर्वतः ।। सात्वततन्त्र ३।६
३. ऐश्वर्यज्ञानधर्माश्च वैराग्यं श्रीर्यशस्तथा ।
एषां सन्दर्शनात्साक्षात्पूर्णो विद्वद्भिरुच्यते ।। सात्वततन्त्र ३।७
४. भागवत १।३।२८ की श्रीधर कृत व्याख्या
५. अंशस्तुरीयो भागः स्यात्कला तु षोडशी मता ।
शतभागो विभूतिश्च वर्णिता कविभिः पृथक् ।। सात्वततन्त्र ३।८

भरत, भगवान् की शक्ति से युक्त कलावतार थे।[१] भागवत के प्रथम स्कन्ध (तृतीय अध्याय) में भगवान् के २२ अवतारों का उल्लेख करने के पश्चात् कहा गया है कि पूर्वोक्त अवतारों के अतिरिक्त विष्णु के और भी अनेक अवतार उसी प्रकार होते हैं, जिस प्रकार सरोवर में सहस्रों छोटे-छोटे स्रोत निकला करते हैं। ऋषि, मनु, देवता, मनुपुत्र और प्रजापति गण ये सब भगवान् विष्णु के ही अंश हैं। ये सब भगवान् के अंश और कला हैं, किन्तु श्रीकृष्ण तो (सम्पूर्ण कलाओं से युक्त) स्वयं भगवान् ही हैं।[२] भागवतकार के मत से व्यास कलावतार[३], पृथु भगवान् की जगत्पालिनी कला के अवतार[४], दत्तात्रेय, सनत्कुमार, ऋषभ, हयग्रीव, हंस, कच्छप, वराह, मत्स्य[५], कलावतार तथा धन्वन्तरि भगवान् के अंशांश से उत्पन्न कलावतार[६], परशुराम अंशावतार[७], शेष कलावतार[८] ऋषभ अंश कला से उत्पन्न[९] तथा कपिल भगवान् के सत्वांश से उत्पन्न अंशावतार हैं।[१०] भागवत की तरह स्कन्द पुराण में[११] भी श्रीकृष्ण को पूर्णावतार बतलाया गया है। इसी प्रकार आदि रामायण[१२] महारामायण[१३] और अध्यात्म रामायण में श्रीराम को पूर्णावतार कहा गया है।[१४] हम देखते हैं कि

---

१. सारस्वततन्त्र—तृतीय पटल श्लोक २७-३३
२. एते चांश-कलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्। भागवत १।३।२८
३. भागवत १।५।२८
४. भागवत ४।१५।३
५. भागवत ११।४।१७
६. भागवत ८।८।३४
७. भागवत ६।१५।१४
८. भागवत १०।१।२४
९. भागवत ५।३।१८
१०. भागवत ३।२४।१०
११. कृष्णचन्द्रः सदा पूर्णस्तस्य षोडश याः कलाः। स्कन्द पुराण वै० खं० ३।६
कृष्णचन्द्रस्य कलाः षोडश रूपिणी। स्कन्द पुराण वै० खं० २।२१
१२. कृष्णोऽंशांश एवास्य वृन्दावन विभूषणः।
एते चांश कलाश्चैव रामस्तु भगवान् स्वयम्॥ आदि रामायण पूर्वखण्ड ८वाँ अध्याय
१३. ऐश्वर्येण च धर्मेण यशसा च श्रियैव च।
वैराग्य मोक्षषड् कोणैः संजातो भगवान् हरिः॥ महारामायण ४८।३६
भरणः पोषणाधारः शरण्यः सर्वव्यापकः।
करुणः षड्गुणैः पूर्णो रामस्तु भगवान् स्वयम्॥ महारामायण
१४. रामं विद्धि परंब्रह्म सच्चिदानन्द मद्वयम्। अध्यात्म रामा० १।१।३२

असुर-विनाशक और जगद्रक्षण आदि कार्यों की दृष्टि से श्रीकृष्ण और श्रीराम दोनों ही महान् और पूर्ण थे। इसीलिए पद्मपुराण में श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनों को ही पूर्णावतार माना गया है।[1] ब्रह्मवैवर्त पुराण में श्रीराम के अतिरिक्त नृसिंह को भी पूर्णावतार कहा गया है।[2]

ईश्वर के पाँच रूप

पांचरात्र साहित्य में कहा गया है कि ईश्वर निम्नांकित पाँच रूपों में प्रकट होते हैं[3] :—

१. पर—पर रूप में ईश्वर वैकुण्ठ में निवास करते हैं। वे मर्यादित चरणों से युक्त एक सिंहासन पर स्थापित शेषनाग-शैय्या पर आसीन हैं। श्री और इला आदि देवियाँ उनकी सेवा करती हैं।[4] वे शंख, चक्र एवं अन्य दिव्यायुधों को धारण करते हैं; पर रूप में ईश्वर ज्ञान, शक्ति आदि अशेष शुभ गुणों के भण्डार हैं। अनन्त, गरुड़ और विश्वक्सेन आदि अविनाशी और मुक्त आत्माएँ उनके सामीप्य का आनन्द प्राप्त करती हैं। भगवान् का पर रूप सर्वश्रेष्ठ होता है। वह कालातीत एवं नित्य उपास्य रूप है।

२. व्यूह—ईश्वर सृष्टि-रचना आदि उद्देश्यों से प्रेरित होकर चार रूप धारण करते हैं—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध[5]। वासुदेव छहों गुणों से युक्त हैं।[6] संकर्षण में ज्ञान और बल[7], प्रद्युम्न में ऐश्वर्य और वीर्य[8] तथा अनिरुद्ध में शक्ति और तेज[9] का प्राकट्य होता है। ईश्वर का व्यूह रूप जगत् की सृष्टि, उसके पालन तथा संहार से सम्बन्धित होता है।[10]

---

१. रामकृष्णावतारौ हि परिपूर्णौ हि सद्गुणैः। पद्मपुराण ६।२४२।८८
२. पूर्णो नृसिंहो रामश्च। ब्रह्मवैवर्तपुराण। श्रीकृष्ण पू० अ० ६
३. तत्त्वत्रय, पृष्ठ १०१
४. श्रिया पुष्ट्यागिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया।
   विद्ययाऽविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम्॥ भागवत १०।३९।५५
५. वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम्।
   अनिरुद्ध इति ब्रह्मन्मूर्तिव्यूहोऽभिधीयते॥ भागवत १२।११।२१
६. ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः।
   उन्मिषन्ति यदा तुल्यं वासुदेवस्तदोच्यते॥ लक्ष्मीतन्त्रम् ४।१३
७. तेषां ज्ञानबलोन्मेषे संकर्षण उदीर्यते। लक्ष्मीतन्त्रम् ४।१४
८. वीर्यैश्वर्यसमुन्मेषे प्रद्युम्नः परिकीर्तितः। लक्ष्मीतन्त्रम् ४।१५
९. शक्तितेजः समुन्मेषे अनिरुद्धः स ईरितः। लक्ष्मीतन्त्रम् ४।१६
१०. सृजते अनिरुद्धोऽत्र प्रद्युम्नः पाति तत्कृतम्।
   सृष्टं तद्रक्षितं चान्ते स च संकर्षणः प्रभुः॥ लक्ष्मीतंत्रम् ४।१९

३. विभव—भगवान् का विभव रूप ही अवतार धारण करता है। गौण और मुख्य, इन दो प्रकार के विभव से क्रमशः गौण और मुख्य अवतार होते हैं। गौण अवतार आवेशावतार कहे जाते हैं और मुख्य अवतार साक्षात् अवतार के रूप में प्रसिद्ध हैं। आवेशावतार दो प्रकार के होते हैं १. स्वरूपावेश २. शक्त्यावेश। ब्रह्मा और शिव शक्त्यावेश कहलाते हैं। परशुराम के शरीर में स्वरूपावेश हुआ था।[१] विभव से होने वाले अवतार ३९ हैं[२], किन्तु उनमें चौबीस विशेष प्रसिद्ध हैं।

४. अन्तर्यामी—इस रूप में परमात्मा जीव के हृदय में निवास करते हैं। अन्तर्यामी परमात्मा को केवल योगी ही देख सकते हैं।[३] अन्तर्यामी रूप से परमेश्वर जीव की सभी दशाओं-स्वर्ग, नर्क और गर्भावस्था आदि में उसकी रक्षा करते हैं।[४]

५. अर्चा—गृहों, ग्रामों और नगरों आदि में उपासक द्वारा चुने गए द्रव्य से निर्मित प्रतिमाओं में ईश्वर प्रतिष्ठित होते हैं। प्रतिमा से तात्पर्य भक्ति भावना से भावित देव विशेष की मूर्ति अथवा देव भावना से अनुप्राणित पदार्थ विशेष की अनुकृति से होता है।[५] अर्चा रूप में ईश्वर विभिन्न द्रव्यों में देश, काल और अधिकारी के भेद से रहित होकर भक्तों की उपासना के लिए स्थित रहते हैं।[६]

गीता में कहा गया है कि भक्त भगवान् को जिस भाव से उपासना करते हैं; भगवान् उसी भाव से भक्तों की कामना-पूर्ति करते हैं। ईश्वर भक्तों के अभावों को दूर कर उन्हें वैभव से युक्त कर देते हैं और उनके वैभव की रक्षा करते हैं।[७] भगवान् सम्पूर्ण प्राणियों में समान रूप से व्याप्त हैं; तथापि भक्तों के प्रेम के कारण उनके हृदय में प्रकट हो जाते हैं।[८] भगवान् के दर्शन अनन्य भक्ति से ही होते हैं।[९]

---

१. तत्त्वत्रय—पृष्ठ १०८
२. विभवाः पद्मनाभाद्यास्त्रिंशच्च नव चैव हि। अहि० सं० ५।५०
३. व्योमवच्च। वेदान्त दर्शन १।२।७
४. तत्त्वत्रय—पृष्ठ ११६-११७
५. प्रतिमा विज्ञान—डॉ० द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल—पृष्ठ २०
६. तत्त्वत्रय—पृष्ठ ११७
७. ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। गीता ४।११
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ गीता ९।२२
८. समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥ गीता ९।२९
९. भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥ गीता ११।५४

निरन्तर चिन्तन करने वाले प्रेमी भक्तों का भगवान् शीघ्र उद्धार कर देते हैं।[1] भक्त पराभक्ति के द्वारा भगवान् के स्वरूप को जानकर उन्हीं को प्राप्त हो जाता है।[2] भगवान् सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय प्रदेश में स्थित होकर प्राणियों को यंत्र की भाँति वर्तन कराते हैं। जो भक्त हृदयस्थ परमेश्वर की शरणागति ग्रहण करते हैं, उन्हीं को परम शान्ति मिलती है।[3] भगवान् के समान या उनसे बड़ा कोई नहीं है। वे सबसे बड़े हैं। उनमें ज्ञान, बल आदि स्वाभाविक गुण होते हैं।[4]

भगवान् श्रीराम के गुणों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि श्रीराम का निर्मल यश समस्त पापों को नष्ट कर देने वाला है।[5] जो पुरुष श्रीराम की कथाओं को श्रवण करते हैं, वे कर्मबन्धन से मुक्त हो जाते हैं।[6] भगवान् श्रीराम अपने भक्तों के लिए ही लीलाएँ करते हैं। वे सम्पूर्ण लोकों में पूजित होकर भी मनुष्यवत् आचरण करते हैं। वे सर्वज्ञ हैं, तथा भूत, वर्तमान और भविष्य का उन्हें सहज ज्ञान होता है।[7]

---

१ तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसार, सागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशित चेतसाम्॥ गीता १२।७

२. भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥ गीता १८।५५

३. ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ गीता १८।६२

४. न तस्य कार्यं करणं च विद्यते, न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञान बलक्रिया च॥
श्वेताश्वतर उप० ६।८

५. यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम्।
भागवत ९।११।२१

६. पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन्।
आनृशंस्यपरो राजन् कर्मबन्धैर्विमुच्यते॥ भागवत ९।११।२३

७ राम त्वं परमेश्वरोऽसि सकलं जानासि विज्ञान दृग्,
भूतं भव्यमिदं त्रिकालकलना साक्षी विकल्पोज्झितः।
भक्तानामनुवर्तनाय सकला कुर्वन् क्रिया संहृति,
त्वं प्रत्यग्मनुजाकृतिर्मुनिवचो भासीश लोकार्चितः॥
अध्यात्मरामायण ७।४।१२

गोस्वामी जी के काव्य में अवतारवाद

गोस्वामी जी ने पुराणों में प्रतिपादित भगवान् के अवतारों की दोनों परम्पराओं—(१) चौबीस अवतार की परम्परा (२) दशावतार की परम्परा—का उल्लेख किया है। उन्होंने भगवान् के दशावतारों का उल्लेख करते हुए कहा है कि भगवान् ने अम्बरीष को दुर्वासा के शाप से मुक्त करने के लिए दस बार अवतार धारण किया था—

जाको नाम लिये छूटत भव जनम मरन दुख भार।
अंबरीष हित लागि कृपानिधि सोइ जनमे दस बार॥

विनयपत्रिका ९८।५

भगवान् ने मत्स्य रूप धारण कर महाप्रलय के समय जीवों से युक्त मनु की नौका की रक्षा की, शूकर रूप धारण कर जलमग्न पृथ्वी का उद्धार किया, कच्छप बनकर समुद्रमंथन के समय मंदराचल को अपनी पीठ पर धारण किया और नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकशिपु का वध किया। उन्होंने वामन रूप धारण कर राजा बलि से तीन पग भूमि के रूप में सम्पूर्ण ब्रह्मांड लेकर देवों की रक्षा की। उन्होंने परशुराम के रूप सहस्रार्जुन का और श्रीराम के रूप में रावणादिक का वध किया। श्रीकृष्ण के रूप में भगवान् ने कंसादि का वध कर पृथ्वी का भार हरण किया और बुद्धावतार में हिंसा प्रधान यज्ञों का विरोधकर अहिंसा की प्रतिष्ठा की। भगवान् का दशम अवतार कल्कि अवतार होगा, जिसमें वे म्लेच्छों का विनाश करेंगे।[१]

---

१. वारिचर वपुष धरि भक्त निस्तार पर, धरणि कृत नाव महिमातिगुर्वी।
सकल यज्ञांशमय उग्र विग्रह क्रोड़, मर्दि दनुजेश उद्धरण उर्वी॥
कमठ अति विकट तनु कठिन पृष्ठोपरी, भ्रमत मंदरकण्डु सुख मुरारी।
प्रकट कृत अमृत गो इन्दिरा, इन्दु वृन्दारकावृन्द आनन्दकारी॥
मनुज मुनि सिद्ध सुर नाग त्रासक, दुष्ट दनुज द्विज धर्म मरजाद हर्त्ता।
अतुल मृगराज वपु धरित, विद्दरित अरि, भक्त प्रह्लाद अह्लाद कर्त्ता॥
छलन बलि कपट बटु रूप वामन, ब्रह्म भुवन पर्यन्त पद तीन करणं।
चरण नख नीर त्रैलोक पावन परम, विबुध जननी दुसह शोक हरणं॥

विनयपत्रिका ५२।२-५

२. क्षत्रियार्धीश करि निकर नवकेसरी परशुधर विप्र सस जलदरूपं।
बीस भुजदण्ड दससीस खंडन चंड वेग सायक नौमि राम भूपं॥

(शेष अगले पृष्ठ पर देखें)

गोस्वामी जी ने चौबीस अवतारों के अन्तर्गत नृसिंहावतार, वराहावतार, रामावतार, कृष्णावतार और वस्त्रावतार का उल्लेख किया है।

नृसिंहावतार—जब हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को अनेक यातनायें दीं, तब उसकी रक्षा के लिए भगवान् नृसिंह खम्भे को विदारकर प्रकट हो गये और उन्होंने हिरण्यकशिपु का वध किया। प्रह्लाद सभी स्थावर, जंगम पदार्थों में भगवान् के दर्शन किया करता था। जब हिरण्यकशिपु ने कहा 'तुम्हारे भगवान् कहाँ हैं', तब प्रह्लाद ने उत्तर दिया 'सर्वत्र'। हिरण्यकशिपु ने पूछा 'इस खम्भे में भी हैं' प्रह्लाद ने कहा 'हाँ'। इतना सुनते ही भगवान् भयंकर ध्वनि करते हुए खम्भे से प्रकट हो गये।[१]

वराहावतार—भगवान् ने वराह अवतार धारण कर हिरण्याक्ष को और नृसिंह अवतार लेकर हिरण्यकशिपु को मारा—

हिरण्याच्छ भ्राता सहित, मधु कैटभ बलवान।
जेहि मारे सोइ अवतरेउ, कृपासिन्धु भगवान॥ दोहावली ११५

वस्त्रावतार—भगवान् के दस अवतार प्रसिद्ध हैं। उन्होंने द्रौपदी की लज्जा बचाने के लिए वस्त्रावतार नामक ग्यारहवाँ अवतार धारण किया—

सभा सभासद निरखि पट, पकरि उठायो हाथ।
तुलसी कियो इगारहो, बसन बेस जदुनाथ॥ दोहावली १६८

कृष्णावतार—तुलसीदास जी ने कृष्णगीतावली की रचना की है, जिसमें उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का गान किया है। कवितावली में भी गोपियों

(पूर्व पृष्ठ का अवशिष्टांश)
भूमि भर भार हर प्रकट परमातमा ब्रह्म नर रूप धर भक्त हेतू।
वृष्णि कुल कुमुद राकेश राधारमण कंस बंसाटवी धूमकेतू॥
प्रबल पाखण्ड महि मण्डलाकुल देखि, निंद्यकृत अखिल मख कर्मजालं।
शुद्ध बोधैकघन ज्ञानगुणधाम अजबौद्ध अवतार वंदे कृपालं॥
कालकलिजनित मल मलिन मन सर्व नर मोह निशि निबिड़यवनांधकारं।
विष्णु यश पुत्र कलकी दिवाकर उदित दास तुलसी हरण विपत्तिभारं॥
विनयपत्रिका ५२।६-९

---

१. कादि कृपान, कृपा न कहूँ, पितु काल कराल बिलोकि न भागे।
राम कहाँ ? सब ठाउँ है, खंभ में, हाँ सुनि हाँक नृकेहरि जागे॥
बैरि बिदारि भए बिकराल, कहें प्रहलादहि कें अनुरागे।
प्रीति प्रतीति बढ़ी तुलसी, तबतें सब पाहन पूजन लागे॥
कवितावली। उत्तरकांड। २८

के अनन्य प्रेम सम्बन्धी पद उपलब्ध होते हैं। एक गोपी उद्धव से अपनी विरह-व्यथा का उल्लेख करते हुए कहती है कि मेरी सखी ने मुझे पहले ही मना किया था कि 'तुम कृष्ण से प्रेम न करो', परन्तु तब मैंने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया था। अब उसी का फल भोग रही हूँ—

जब नैनन प्रीति दई ठग स्याम सों, स्यानी सखी हठि हौं बरजी।
नहिं जानो बियोगु,सो रोग है, आगें झुकी तब हौं तेहि सो तरजी॥
अब देह भई पट नेह के घाले सों, ब्योंत करै बिरहा दरजी।
ब्रजराज कुमार बिना सुनु भृङ्ग! अनंग भयो जिय को गरजी॥

कवितावली।उत्तरकाण्ड १३३

तुलसी-साहित्य में भगवान् राम

श्रीराम के अवतार के हेतु—रामचरितमानस में कहा गया है कि भगवान् श्रीराम का अवतार प्रत्येक कल्प में होता है—

कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना बिधि करहीं॥

रामचरितमानस १।१४०।१

यद्यपि उनके अवतार के अनेक हेतु हैं--

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई।

× × ×

रामजनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक तें एका॥

तथापि रामचरितमानस में चार कल्पों में होने वाले श्रीराम-अवतार के निम्नांकित हेतु बतलाये गये हैं—

१—द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ॥
बिप्र श्राप तें दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई॥

रामचरितमानस १।१२२।२-३

भए निसाचर जाइ तेइ, महाबीर बलवान।
कुंभकरन रावन सुभट, सुर बिजई जग जान॥ रामचरितमानस १।१२२
एक बार तिन्ह के हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥

रामचरितमानस १।१२३।१

२—एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलंधर सन सब हारे॥

रामचरितमानस १।१२३।३

छल करि टारेउ तासु ब्रत, प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब जेहि जानेउ मरम तब, श्राप कोप करि दीन्ह॥

रामचरितमानस १।१२३

तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ॥
एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नर देहा॥

रामचरितमानस १।१२४।१,२

३—नारद श्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा॥

रामचरितमानस १।१२४।३

होहु निसाचर जाइ तुम्ह, कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल, बहुरि हँसेहु मुनि कोउ॥

रामचरितमानस १।१३५

चले जुगल मुनि पद सिर नाई। भए निसाचर कालहि पाई॥

रामचरितमानस १।१३६।४

एक कलप एहि हेतु प्रभु, लीन्ह मनुज अवतार।
सुर रंजन सज्जन सुखद, हरि भंजन भुवि भार॥ रामचरितमानस १।१३९

४—यह इतिहास पुनीत अति, उमहि कही बृषकेतु।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि, राम जनम कर हेतु॥ रामचरितमानस १।१५२

बिस्व बिदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू॥

रामचरितमानस १।१५३।१

राजधनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रतापभानु अस ताही॥
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुजबल अतुल अचल संग्रामा॥

रामचरितमानस १।१५३।३

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा॥
दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥
भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन बलधामा॥
सचिव जो रहा धरम रुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू॥
नाम बिभीषन जेहि जग जाना। बिष्नु भगत बिग्यान निधाना॥

रामचरितमानस १।१७६।१-५

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥

रामचरितमानस १।१८७।१

भगवान् के अवतार धारण करने के सामान्य प्रयोजनों का उल्लेख करते हुए गोस्वामी जी ने लिखा है कि व्यापक और विश्वरूप भगवान् श्रीराम भक्तों के हित के लिए अवतार धारण करते है—

ब्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी॥

मानस १।१३।२,३

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप ।। दोहावली ११३

नर तन धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा ।।
मानस २।१२७।३

भगवान् भक्तों की भक्ति के कारण उनके वश में हो जाते हैं। इसलिए वे भक्तों के प्रति प्रेम होने के कारण अवतार लेते हैं—

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।।
रामचरितमानस १।११६।१

व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस, कौसल्या के गोद ।। रा० च० मा० १।१६८

कवि ने लिखा है कि भगवान् का अवतार भक्तों, ब्राह्मणों, देवों, धर्म, गो और पृथ्वी की रक्षा के लिए होता है—

भगत भूमि भूसुर सुरभि, सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु, सुनत मिटहिं जगजाल ।।
रामचरितमानस २।६३

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहिं लागि धरिहउँ नर बेसा ।।
रामचरितमानस १।१८७।१

तेहि अवसर भंजन महि भारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा ।।
रामचरितमानस १।४८।४

बिप्र धेनु सुर संतहित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गो पार ।।
रामचरितमानस १।१९२

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ।।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।।
रामचरितमानस १।१२१।३-४

भगवान् श्रीराम—गोस्वामी जी ने अपने काव्यों में चरितनायक श्रीराम को भगवान् का पूर्ण अवतार प्रतिपादित किया है। भगवान् श्रीराम में पूर्ण भगवत्ता के दर्शन होते हैं। कवि ने श्रीराम में छह भगों की स्थिति इस प्रकार दिखलाई है—

(१) ऐश्वर्य—अमर नाग किन्नर दिसिपाला। चित्रकूट आए तेहि काला ।।
(२) धर्म—राम बास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ।।
(३) यश—चित्रकूट रघुनंदन छाए। समाचार सुनि सुनि मुनि आए ।।
(४) श्री—लखन जानकी सहित प्रभु, राजत रुचिर निकेत।

(५) ज्ञान—ज्ञान सभा जनु तनु धरें, भगति सच्चिदानन्द ।
(६) वैराग्य—सीस जटा कटि मुनि पट बांधे ।

गोस्वामी जी ने पंच तत्वों पर श्रीराम की विजय का उल्लेख किया है—

१. क्षिति तत्त्व पर विजय—पत्थर की शिला को नारी बना देना—
परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तप पुंज सही ॥
रामचरितमानस १।२११

२. जल तत्त्व पर विजय—बाण संधान करते ही समुद्र में ज्वाला उठना—
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला । उठी उदधि उर अंतर ज्वाला ॥
रामचरितमानस । सुन्दर।५८।३

३. अग्नि तत्त्व पर विजय—अग्नि-परीक्षा में सीता की रक्षा होना—
श्रीखण्ड राम पावक प्रवेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली ॥
रामचरितमानस ६।१०६।१

४. पवन तत्त्व पर विजय—हरि प्रेरित तेहि अवसर, चले मरुत उनचास ।
रामचरितमानस । सुन्दर।२५

५. आकाश तत्त्व पर विजय—श्रीराम का अपने उदर में काकभुशुण्डि तथा कौशल्या को विराट् रूप के दर्शन करवाना—
देखरावा मातहि निज, अद्भुत रूप अखंड ।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्माण्ड ॥ मानस १।२०१

निम्नांकित प्रसंगों में श्रीराम की भगवत्ता के दर्शन होते हैं--

१--सरिता बन गिरि अवघट घाटा । पति पहिचानि देहिं बर बाटा ॥
२—जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया । करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया ॥
३—सब तरु फरे राम हित लागी । रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी ॥
४--छुवत सिला भइ नारि सुहाई ।
५--देत चापु आपुहिं चलि गयऊ ।
६--देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपु दल लरि मर्यो ।
७—इहाँ उहाँ दुइ बालक देखी ।
८--अमित रूप प्रगटे तेहि काला । जथा जोग मिले सबहि कृपाला ॥
९—कर परसा सुग्रीव सरीरा । तनु भा कुलिस मिटी सब पीरा ॥
१०—अनल करउँ तनु राखहु प्राना ।
११--निज निज रुख सब रामहि देखा । कोउ न जान कछु मरम बिसेषा ॥
१२—सतिमनहि यह मरम न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना ॥
१३—मुनि समूह महँ बैठे, सनमुख सब की ओर ।
सरद इन्दु तन चितवत, मानहुँ निकर चकोर ॥

१४—सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए।

१५—सानुज मिलि पल महुँ सब काहू।

१६—अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुसल जेहि पूछा नाहीं॥
यह कछु नहिं प्रभु कइ अधिकाई। बिस्वरूप ब्यापक रघुराई॥

गोस्वामी जी ने श्रीराम का उल्लेख तीन रूपों में किया है, विष्णु, महाविष्णु और ब्रह्म। हम यहाँ कवि द्वारा प्रतिपादित श्रीराम के तीनों रूपों पर विचार करेंगे।

विष्णु—गोस्वामी जी ने लिखा है कि लक्ष्मीपति विष्णु जिसकी रक्षा करते हैं, भला उसका अहित कैसे हो सकता है?[१] श्रीराम समस्त लोकों के आश्रय-स्थल हैं।[२] जन्म के समय वे चतुर्भुज रूप धारण किये हुए थे।[३] भगवान् के नामकरण के प्रसंग में कहा गया है कि वे आनन्द के समुद्र और सुख की राशि हैं। उनके एक कण से ही तीनों लोक सुखी हो जाते हैं। वे सम्पूर्ण लोकों को शान्ति प्रदान करते हैं।[४] वे सुख के पुंज, मोह से परे तथा ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से अगम्य हैं।[५] सम्पूर्ण चराचर जगत् माया के अधीन है; किन्तु वही माया प्रभु से भयभीत बनी रहती है। भगवान् उस माया को भौंह के इशारे पर नचाते हैं। परम शक्तिमान् भगवान् राम सभी प्राणियों के उपास्य हैं।[६]

महाविष्णु—कवि ने श्रीराम को ब्रह्मा, विष्णु और शिव का स्वामी बतलाया है। सती जब भगवान् श्रीराम की भगवत्ता की परीक्षा लेने के उद्देश्य से उनके पास

---

१. सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥
रामचरितमानस १।१२६।४

२. जगनिवास प्रभु प्रगटे, अखिल लोक बिश्राम। रामचरितमानस २।१९१

३. लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
रामचरितमानस १।१९२।१

४. जो आनंद सिन्धु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥
सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोकदायक बिश्रामा॥
रामचरितमानस १।१९७।३

५. सुख संदोह मोह पर, ग्यान गिरा गोतीत। रामचरितमानस १।१९९

६. जीव चराचर बस के राखे। सो माया प्रभु सों भय भाखे॥
भृकुटि बिलास नचावइ ताही। अस प्रभु छाड़ि भजिअ कहु काही॥
रामचरितमानस १।२००।२-३

गयीं, तब वहाँ सती को अनेक ब्रह्मा, विष्णु और महेश श्रीराम की सेवा करते हुए दिखलायी पड़े।[1]

बाललीलारत श्रीराम के अद्भुत रूप में माता कौशल्या[2] को और उनके उदर में काकभुशुण्डि को अनेक ब्रह्माण्डों के दर्शन हुए। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर भिन्न-भिन्न रूप धारण किये हुए थे, किन्तु सभी ब्रह्माण्डों में भगवान् श्रीराम का एक ही रूप दिखलायी पड़ा।[3] कवि ने श्रीराम के प्रत्येक रोम में अनेक ब्रह्माण्डों की स्थिति बतलायी है।[4] श्रीराम, ब्रह्मा, विष्णु और शिव को नचाने वाले हैं।[5] ब्रह्मा विष्णु और शिव श्रीराम की आज्ञा और शक्ति से ही जगत् का उद्भव, पालन और संहार करते हैं।[6]

---

१. देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका।।
बंदत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा।।
सती बिधात्री इंदिरा, देखीं अमित अनूप।
जेहिं जेहिं बेष अजादि सुर, तेहि तेहि तन अनुरूप।।

रामचरितमानस १।५४।४ से १।५४ तक

पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेषा। राम रूप दूसर नहिं देखा।।

रामचरितमानस १।५५।२

२. देखरावा मातहि निज, अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मंड।।
अगनित रबि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन।।

रामचरितमानस १।२०१ एवं १।२०२।१

३. उदर माझ सुनु अंडज राया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया।।

रामचरितमानस ७।८०।२

लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसि त्राता।।

रामचरितमानस ७।८१।१

भिन्न-भिन्न मैं दीख सबु, अति बिचित्र हरि जान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु, राम न देखेउँ आन।। रामचरितमानस ७।८१

४. ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।

रामचरितमानस १।१९२।३

५. जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे।।

रामचरितमानस २।१२७।१

६. जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा।।

रामचरितमानस।सुन्दरकाण्ड।२१।३

स्वायम्भुव मनु और शतरूपा उन परमेश्वर के समान पुत्र चाहते थे, जिनके अंश से अनेक ब्रह्मा, विष्णु और महेश उत्पन्न होते हैं। अन्त में परमेश्वर ने प्रसन्न होकर उन्हें यह वर प्रदान किया कि मैं स्वयं तुम्हारा पुत्र बनकर आऊँगा। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महेश के स्वामी महाविष्णु ने ही राम के रूप में अवतार धारण ३५
किया।[1] सम्पूर्ण विश्व और उसके स्वामी ब्रह्मादि देव श्रीराम के वशवर्ती बतलाये गये हैं।[2] विशेषतः शिव भगवान् राम को अपना इष्टदेव कहते हैं।[3] भगवान् राम करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर शरीर वाले, करोड़ों दुर्गाओं के समान शत्रुनाशक तथा करोड़ों इन्द्र, आकाश, मरुत, रवि, चन्द्रमा, काल, धूमकेतु, पाताल, यम, तीर्थ, हिमालय, सिन्धु, कामधेनु, शारदा, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, कुबेर और शेषनारायण के समान विलासी, शक्तिमान और गौरववान् बतलाये गये हैं।[4] वे विष्णु ब्रह्मा और शंकर को

---

१. नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा॥
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥
रामचरितमानस १।१४४।३
भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥
रामचरितमानस १।१४६।४
दानि सिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहउँ सतिभाउ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत, प्रभु सन कवन दुराउ॥ रामचरितमानस १।१४९
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥
रामचरितमानस १।१५०।१

२. यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुरा।
रामचरितमानस।१।मङ्गलाचरण।छन्द ६

३. सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा॥
मातु पिता गुर प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी॥
तुम्ह सब भाँति परम हितकारी। अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी॥
रामचरितमानस १।७७।१, २
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। रामचरितमानस १।५१।४

४. राम काम सतकोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन॥
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सतकोटि अमित अवकासा॥
मरुत कोटि सत बिपुल बल, रबि सत कोटि प्रकास।
ससि सतकोटि सुसीतल, समन सकल भवत्रास॥
काल कोटि सत सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरंत।
धूमकेतु सतकोटि सम, दुराधरष भगवंत॥

(शेष अगले पृष्ठ पर देखें)

क्रमशः विष्णुत्व, विधित्व और शिवत्व प्रदान करते हैं।[1] कवि ने पंचदेवों पर भगवान राम का प्रभाव दिखलाया है—

१. ब्रह्मा—ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई॥
२. विष्णु—हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥
३. महेश—जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन॥
४. दुर्गा—भय कर अस बिमोह अब नाहीं।
५. सूर्य—रथ समेत रबि थाकेउ, निसा कवन बिधि होइ।

श्रीमद्भागवत में महाविष्णु का उल्लेख भूमा के रूप में किया गया है। ये भूमा ब्रह्मादिकों के अधीश्वर बतलाये गये हैं।[2] भागवतकार के मत से साक्षात् भगवान् (कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्) श्रीकृष्ण भी भूमा को प्रणाम करते हैं।[3]

ब्रह्म—तुलसी के राम निर्गुण और सगुण ब्रह्म हैं। कबीर ने कहा था कि निर्गुण—निराकार ब्रह्म का अवतार नहीं होता। जिसका कोई रूप नहीं है, जो निराकार है, वह अवतार लेकर लीला नहीं करता है—

(पूर्व पृष्ठ का अवशिष्टांश)

प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरिस कराला॥
तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन॥
हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा॥
कामधेनु सतकोटि समाना। सकल कामदायक भगवाना॥
सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सतकोटि सृष्टि निपुनाई॥
बिष्नु कोटि सम पालन कर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता॥
धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना॥
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा॥

रामचरितमानस ७।९१।४ से ७।९२।४ तक

---

१. हरिहि हरिता बिधिहि बिधिता, सिवहि सिवता जो दई।
सोइ जानकी-पति मधुर मूरति, मोदमय मंगल मई॥ विनय पत्रिका १३५।३

२. सुनन्दनन्द प्रमुखैः स्वपार्षदैश्चक्रादिभिर्मूर्तिधरैर्निजायुधैः।
पुष्ट्या श्रिया कीर्त्यजयाखिलर्द्धिभिर्निषेव्यमाणं परमेष्ठिनां पतिम्॥
भागवत १०।८९।५७

३. ववन्द आत्मानमनन्तमच्युतो जिष्णुश्च तद्दर्शनजातसाध्वसः।
तावाह भूमा परमेष्ठिनां प्रभुर्बद्धाञ्जली सस्मितमूर्जया गिरा॥
भागवत १०।८९।५८

दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना । राम नाम को मरम है आना ।।
ना दसरथ घर अवतरि आवा । ना लंका का राव सतावा ।।

बीजक पृ० २०६

गोस्वामी जी ने कबीरदास की इसी उक्ति को ध्यान में रखकर पार्वती के प्रश्न—

राम सो अवध नृपति सुत सोई । की अज अगुन अलख गति कोई ।।
जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि, नारि बिरहँ मति भोरि ।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि ।। मानस १।१०८

के उत्तर में निम्नांकित भाव व्यक्त किये हैं—

एक बात नहिं मोहि सुहानी । जदपि मोहबस कहेहु भवानी ।।
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना । जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना ।।
कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह पिसाच ।
पाषंडी हरिपद बिमुख, जानहिं झूठ न साच ।।

रामचरितमानस १।११४।४-१।११४

अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।।

रामचरितमानस १।११६।१

जेहि इमि गावहिं बेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।
सोई दसरथ सुत भगत हित, कोसलपति भगवान ।।

रामचरितमानस १।११८

गोस्वामी जी ने श्रीराम को निर्गुण और सगुण दोनों माना है—

निर्गुण सगुण विषम सम रूपं । रामचरितमानस । अरण्यकांड ११।६

एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानन्द परधामा ।।

रामचरितमानस १।१३।२

नेति नेति जेहि बेद निरूपा । निजानन्द निरुपाधि अनूपा ।।

रामचरितमानस १।१४४।३

राम ब्रह्म परमारथ रूपा । अविगत अलख अनादि अनूपा ।।

रामचरितमानस २।९३।४

राम सरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धिपर ।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ।।

रामचरितमानस २।१२६

जो सर्वव्यापी, निर्गुण और निराकार ब्रह्म है, वही राम रूप में अवतरित होकर कौशल्या की गोद में क्रीड़ा करता है—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत बिनोद ।
सो अज प्रेम भगति बस, कौसल्या के गोद ॥

रामचरितमानस १।१९८

राम ब्रह्म परमारथ रूपा । अबिगत अलख अनादि अनूपा ॥
सकल बिकार रहित गतभेदा । कहि नित नेति निरूपहिं बेदा ॥

रामचरितमानस २।९३।४

तात राम नहिं नर भूपाला । भुवनेस्वर कालहु कर काला ॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता । ब्यापक अजित अनादि अनंता ॥

रामचरितमानस।सुन्दरकांड ३९।१

ग्यान गिरा गोतीत अज, माया मन गुन पार ।
सोइ सच्चिदानन्द घन कर नर चरित उदार ॥ रा० च० मा० ७।२५

भगवान् श्रीराम अजन्मा, निर्गुण, निराकार, निरंजन और प्रकृति से अतीत कहा है—

सोइ सच्चिदानन्द घन रामा । अज बिग्यान रूप बल धामा ॥
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता । अखिल अमोघसक्ति भगवंता ॥
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता । सबदरसी अनवद्य अजीता ॥
निर्मम निराकार निरमोहा । नित्य निरंजन सुख संदोहा ॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी । ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ॥

× × ×

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप ।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ॥

रामचरितमानस ७।७२

गोस्वामी जी ने भगवान् राम की दयालुता का वर्णन करते हुए कहा है कि वे अपने भक्तों का बहुत अधिक ध्यान रखते हैं। कोई व्यक्ति यदि भगवान् का अपराध करे, तो वे उस अपराधी को क्षमा कर सकते हैं; किन्तु उनके भक्त का अपराध करने वाला व्यक्ति उनकी क्रोधाग्नि में पड़कर अवश्य नष्ट हो जाता है।[1] भगवान् राम अपने भक्तों की सेवा करने वाले व्यक्ति से सुख मानते हैं और उनके साथ

१. सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ । निज अपराध रिसाहिं न काऊ ॥
जो अपराधु भगत कर करई । राम रोष पावक सो जरई ॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा । यह महिमा जानहिं दुरबासा ॥

रामचरितमानस २।२१८।२-३

शत्रुता करने वाले व्यक्ति से घोर शत्रुता मानते हैं।[१] यद्यपि भगवान् समदर्शी हैं, उनके हृदय में न राग है और न रोष; तथापि वे भक्तों और दुष्टों की भावना को देखते हुए अनुकूल और प्रतिकूल व्यवहार करते हैं।[२] भगवान् के भक्तों का अनिष्ट कोई नहीं कर सकता।[३] श्रीराम अपने भक्तों की चूक की ओर ध्यान नहीं देते, अपितु उनके हृदयस्थ प्रेम का निरन्तर स्मरण करते रहते हैं।[४] वे अपने भक्तों की भक्ति के वश में रहते हैं।[५] भगवान् अनिष्टों से अपने भक्तों की उसी प्रकार रक्षा करते हैं, जिस प्रकार माता अग्नि और सर्पादि से अपने शिशु (पुत्र) की रक्षा करती है।[६]

---

१. सुनु सुरेस उपदेस हमारा। रामहि सेवकु परम पिआरा॥
मानत सुखु सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैरु अधिकाई॥
रामचरितमानस २।२१६।१

२. जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू॥
× × ×
तदपि करहिं सम विषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥
× × ×
राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी॥
रामचरितमानस २।२१८।२-४

३. सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥
रामचरितमानस १।१२६।४

४. कहत नसाइ होइ हियँ नीकी। रीझत राम जानि जन जी की॥
रहति न प्रभु चित चूक किये की। करत सुरति सय बार हिए की॥
रामचरितमानस १।२८।२-३

५. आन उपाउ न देखिअ देवा। मानत राम सुसेवक सेवा॥
हियँ सपेम सुमिरहु सब भरतहि। निज गुन सील राम बस करतहि॥
रामचरितमानस २।२६५।४

६. सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरगाई॥
प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी॥
जनहि मोर बल निज बल ताही। दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही॥
रामचरितमानस ३।४३।२-५

ब्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस, कौसल्या के गोद॥

रामचरितमानस १।१६८

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल बिकार रहित गत भेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा॥

रामचरितमानस २।६३।४

तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। ब्यापक अजित अनादि अनंता॥

रामचरितमानस।सुन्दरकांड ३९।१

ग्यान गिरा गोतीत अज, माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानन्द घन कर नर चरित उदार॥ रा० च० मा० ७।२५

भगवान् श्रीराम अजन्मा, निर्गुण, निराकार, निरंजन और प्रकृति से अतीत कहा है—

सोइ सच्चिदानन्द घन रामा। अज बिग्यान रूप बल धामा॥
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघसक्ति भगवंता॥
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता॥
निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी॥

× × ×

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥

रामचरितमानस ७।७२

गोस्वामी जी ने भगवान् राम की दयालुता का वर्णन करते हुए कहा है कि वे अपने भक्तों का बहुत अधिक ध्यान रखते हैं। कोई व्यक्ति यदि भगवान् का अपराध कर दे, तो वे उस अपराधी को क्षमा कर सकते हैं; किन्तु उनके भक्त का अपराध करने वाला पापी उनकी क्रोधाग्नि में पड़कर अवश्य नष्ट हो जाता है।[1] भगवान् राम अपने भक्तों की सेवा करने वाले व्यक्ति से सुख मानते हैं और उनके साथ

---

१. सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥
जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरबासा॥

रामचरितमानस २।२१८।२-३

शत्रुता करने वाले व्यक्ति से घोर शत्रुता मानते हैं।[१] यद्यपि भगवान् समदर्शी हैं, उनके हृदय में न राग है और न रोष; तथापि वे भक्तों और दुष्टों की भावना को देखते हुए अनुकूल और प्रतिकूल व्यवहार करते हैं।[२] भगवान् के भक्तों का अनिष्ट कोई नहीं कर सकता।[३] श्रीराम अपने भक्तों की चूक की ओर ध्यान नहीं देते, अपितु उनके हृदयस्थ प्रेम का निरन्तर स्मरण करते रहते हैं।[४] वे अपने भक्तों की भक्ति के वश में रहते हैं।[५] भगवान् अनिष्टों से अपने भक्तों की उसी प्रकार रक्षा करते हैं, जिस प्रकार माता अग्नि और सर्पादि से अपने शिशु (पुत्र) की रक्षा करती है।[६]

---

१. सुनु सुरेस उपदेस हमारा। रामहि सेवकु परम पिआरा ।।
मानत सुखु सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैरु अधिकाई ।।

रामचरितमानस २।२१६।१

२. जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू ।।

× × ×

तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा ।।

× × ×

राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी ।।

रामचरितमानस २।२१९।२-४

३. सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू ।।

रामचरितमानस १।१२६।४

४. कहत नसाइ होइ हियँ नीकी। रीझत राम जानि जन जी की ।।
रहति न प्रभु चित चूक किये की। करत सुरति सय बार हिए की ।।

रामचरितमानस १।२९।२-३

५. आन उपाउ न देखिअ देवा। मानत राम सुसेवक सेवा ।।
हियँ सप्रेम सुमिरहु सब भरतहि। निज गुन सील राम बस करतहि ।।

रामचरितमानस २।२६५।४

६. सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ।।
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी ।।
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरगाई ।।
प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता ।।
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी ।।
जनहि मोर बल निज बल ताही। दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही ।।

रामचरितमानस ३।४३।२-५

ग-भक्त

भक्त का स्वरूप—गीता[१] और वेदान्त[२] दर्शन में जीव को ईश्वर का अंश कहा गया है। अंश का अंशी की ओर सहज आकर्षण होता है। जीव में अपने अंशी परमात्मा के सभी गुण पाये जाते हैं; किन्तु माया के बन्धनों से आबद्ध जीव दुःखी रहता है और उसके दिव्य गुण तिरोहित रहते हैं। परमात्मा का ध्यान करने और उनकी उपासना करने से जीव के तिरोहित दिव्य गुण पुनः व्यक्त हो जाते हैं।[३] महर्षि शाण्डिल्य के मत से जीव का संसार-बन्धन भक्ति न होने के कारण होता है।[४] जब जीव भगवान् के चरणों में आत्मनिवेदन कर देता है;[५] तब उसके बन्धन नष्ट हो जाते हैं[६] और वह प्रभु का कृपापात्र बन जाता है। ईश्वर जीव की अन्तरात्मा में निवास करते हैं। वे जीव की अपेक्षा भूमा और महान् हैं।[७] अतएव जीव को ईश्वर की उपासना अवश्य करनी चाहिए।[८] ईश्वर की भक्ति करने से जीव को अमरत्व प्राप्त होता है।[९]

श्रीमद्भागवत में भक्तों के तीन प्रकार बतलाए गए हैं; १. उत्तम २. मध्यम ३. साधारण।

---

१. ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। गीता १५।७

२. अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधीयत एके।

वेदान्त दर्शन २।३।४३

३. पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततो ह्यस्य बन्धविपर्ययौ। वेदान्त दर्शन ३।२।५

४. संसृतिरेषामभक्तिः स्यान्नाज्ञानात् कारणासिद्धेः। शाण्डिल्य भक्तिसूत्र ९८

५. क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः।
तस्याभिध्यानाद् योजनात् तत्त्वभावाद् भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः॥

श्वेताश्वतर उपनिषद् १।१०

६. ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्यु प्रहाणिः।
तस्याभिध्यानात् तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः॥

श्वेताश्वतर उप० १।११

७. सम्भोगप्राप्तिरिति चेन्न वैशेष्यात्। वेदान्त दर्शन १।२।८
अधिकं तु भेदनिर्देशात्। वेदान्त दर्शन २।१।२२
भूमा सम्प्रसादादध्युपदेशात्। वेदान्त दर्शन १।३।८

८. कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च। वेदान्त दर्शन १।२।४
मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात्। वेदान्त दर्शन १।३।२
स्मृतेश्च। वेदान्त दर्शन १।२।६

९. तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात्। शाण्डिल्य भक्तिसूत्र ३

उत्तम भक्त—आत्मस्वरूप भगवान् सम्पूर्ण प्राणियों में आत्मा रूप से स्थित हैं। अतः जो जीव कहीं भी न्यूनाधिकता न देखकर सर्वत्र परिपूर्ण भगवत्सत्ता को ही देखता है और साथ ही सम्पूर्ण प्राणी और समस्त पदार्थ आत्मस्वरूप भगवान् में ही आधेय रूप से अथवा अध्यस्त रूप से स्थित हैं, अर्थात् वास्तव में भगवत्स्वरूप ही हैं—इस प्रकार का जिसका अनुभव है, ऐसी जिसकी सिद्ध दृष्टि है, उसे भगवान् का परम प्रेमी उत्तम भागवत समझना चाहिए।[1]

मध्यम भक्त—जो भगवान् से प्रेम, उनके भक्तों से मित्रता, दुःखी और अज्ञानियों पर कृपा तथा भगवान् से द्वेष करने वालों की उपेक्षा करता है, वह मध्यम कोटि का भागवत है।[2]

साधारण भक्त—जो भगवान् के अर्चा-विग्रह—मूर्ति आदि—की पूजा तो श्रद्धा से करता है, परन्तु भगवान् के भक्तों या दूसरे लोगों की विशेष सेवाशुश्रूषा नहीं करता है, वह साधारण श्रेणी का भक्त है।[3]

गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने भक्तों की प्रवृत्ति एवं उनके आचरण की प्रशंसा करते हुए कहा है कि भक्त सम्पूर्ण प्राणियों में द्वेष-भाव से रहित होकर सबके प्रति प्रेम करते हैं। वे अहेतुक दयालु होते हैं और अपराध करने वाले को भी अभय प्रदान करते हैं।[4] वे लाभ-हानि से सन्तुष्ट रहते हैं। वे अपने मन और बुद्धि को भगवान् के प्रति अर्पित कर देते हैं।[5] वे न तो किसी से उद्विग्न होते हैं और न किसी को उद्विग्न करते हैं।[6] उनके हृदय में कर्त्तापन का अहंकार नहीं रह जाता।[7] वे सम्पूर्ण

---

१. सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद् भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥ भागवत ११।२।४५
२. ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च ।
प्रेममैत्री कृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥ भागवत ११।२।४६
३. अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धये हते ।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥ भागवत ११।२।४७
४. अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःख सुखः क्षमी ॥ गीता १२।१३
५. संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़ निश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ गीता १२।१४
६. यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ गीता १२।१५
७. अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भ परित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ गीता १२।१६

शुभाशुभ कार्यों के फल का त्याग कर देते हैं।[१] वे शत्रु और मित्र तथा मान और अपमान में समान भाव रखते हैं। उनके हृदय में किसी भी पदार्थ के प्रति आसक्ति नहीं रह जाती।[२] वे निन्दा-स्तुति में सम रहते हैं[३] तथा भगवान् को परम आश्रय और सबका आत्मरूप मानते हैं। वे भगवान् की प्राप्ति के लिए विशुद्ध प्रेम से श्रद्धायुक्त होकर भागवत धर्म का पालन करते हैं।[४]

महर्षि शाण्डिल्य ने भक्त की प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हुए कहा है कि सच्चे भक्त में अर्जुन की भाँति भगवान् के प्रति सम्मान की बुद्धि, इक्ष्वाकु की भाँति भगवान् के नाम या वर्ण के प्रति अधिक आदर, विदुर की भाँति भगवान् या भगवद्भक्त के दर्शन से प्रीति, गोपीजनों की भाँति भगवान् के विरह की अनुभूति, उपमन्यु तथा श्वेतद्वीप निवासियों के समान भगवद्-भिन्न वस्तुओं से स्वभावतः अरुचि, भीष्म और व्यास की भाँति भगवान् की महिमा का निरन्तर वर्णन, व्रजवासियों तथा हनुमान की भाँति भगवान् के लिए जीवन धारण करना, बलि की भाँति 'मैं तथा मेरा सब कुछ भगवान् का ही है', यह भावना रखना, प्रह्लाद की भाँति सभी प्राणियों में भगवद्भाव होना और भीष्म तथा युधिष्ठिर की भाँति भगवान् के प्रतिकूल आचरण न करने का स्वभाव होना चाहिए।[५]

भक्त पाप से दूर रहता है, यदि विधिवशात् वह अनुचित कर्म कर भी बैठता है, तो भगवद्भक्ति उसके सभी पापों और दुष्कर्मों के फल को नष्ट कर देती है।[६] भक्ति जीव का परम धर्म है।[७] भक्ति से साधक के अहंकार का उन्मूलन हो जाता

१. यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ।। गीता १२।१७
२. समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्ण सुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ।। गीता १२।१८
३. तुल्य निन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ।। गीता १२।१९
४. ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ।। गीता १२।२०
५. सम्मानबहुमान प्रीतिविरहेतरविचिकित्सामहिमख्यातितदर्थप्राणस्थान तदीयता सर्वतद्भावा प्रातिकूल्यादीनि च स्मरणेभ्यो बाहुल्यात् । शाण्डिल्य भक्ति सूत्र ४४
६. स्वादो भक्तिमतः क्वचिदाचरितेऽपि पापे प्रायश्चित्तान्तरनिरसनत्वम् । विषयभोगेऽपि तद्दोषनिराकरत्वम् । हरिभक्ति विलास पृष्ठ ६६३-६६४
७. यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथेनासति धावतो बहिः ।।
हरिभक्ति विलास ११।३२०

है और उसकी सम्पूर्ण कामनायें पूरी हो जाती हैं। भक्ति से उपासक को मोक्ष की सिद्धि हो जाती है।[1]

तुलसी-साहित्य में भक्त

गीता के अनुसार भक्त चार प्रकार होते हैं[2] --

(१) अर्थार्थी (२) आर्त्त (३) जिज्ञासु (४) ज्ञानी।

ये चारों प्रकार के भक्त पुण्यात्मा, पापरहित और उदार होते हैं। इन सभी में ज्ञानी भक्त प्रभु को विशेष प्रिय होते हैं।[3] रामचरितमानस और विनय-पत्रिका में उपर्युक्त चारों प्रकार के भक्तों के लक्षण मिल जाते हैं—

आर्त्त भक्त—रोग ग्रस्त कवि की भक्ति आर्त भाव की है—

सीतापति साहेब सहाय हनुमान नित,
हित उपदेस को महेस मानों गुरु कै।

× × ×

कपिनाथ रघुनाथ भोलानाथ भूतनाथ,
रोगसिन्धु क्यों न डारियत गाय खुर कै।। हनुमान बाहुक ४३

इसी प्रकार विनयपत्रिका के निम्नांकित पदों में कवि की आर्तता व्यक्त हुई है—

बंदिछोर बिरुदावली निगमागम गाई।
नीको तुलसीदास को तेरिये निकाई।। विनयपत्रिका ३५।६

दास तुलसी दीन धर्म संबल हीनश्रमित अति खेद मति मोह नाशी।
देहि अवलंब न विलंब अंभोजकर चक्रधर तेज बल शर्मराशी।।
विनयपत्रिका ६०।६

कवि ने लिखा है कि भगवान् के नाम का जप करने से सभी संकट दूर हो जाते हैं—

जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी।।
रामचरितमानस १।२२।५

---

१. हरिभक्ति विलास--पृष्ठ ६६६-६७१

२. चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।। गीता ७।१६
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।। गीता ७।१७

३. रामभगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा।
चहू चतुर कहुँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा।।
रामचरितमानस १।२२।३,४

अर्थार्थी भक्त—भगवान् के नाम का जप करने से साधकों की सभी कामनायें पूरी हो जाती हैं और वे सिद्धियों के स्वामी बन जाते हैं—

साधक नाम जपहिं लय लाये । होहिं सिद्ध अनिमादिक पाये ।।

रामचरितमानस १।२२।४

जिज्ञासु भक्त—रामचरितमानस के गरुड़ और लक्ष्मण जिज्ञासु भक्त के उत्तम उदाहरण हैं । गरुड़ काकभुशुण्डि से पूछते हैं—

एक बात प्रभु पूछउँ तोही । कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही ।
कहहिं संत मुनि बेद पुराना । नहिं कछु दुर्लभ ग्यान समाना ।।

× × ×

ग्यानहि भगतिहि अंतर केता । सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता ।।

रामचरितमानस ७।११५।५-६

ज्ञानी भक्त—रामचरितमानस के वाल्मीकि ज्ञानी भक्त हैं । वे श्रीराम से कहते हैं—

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे । बिधि हरि संभु नचावनि हारे ।।
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा । और तुम्हहि को जाननिहारा ।।
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई । जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ।।
तुम्हरिहि कृपाँ, तुम्हहि रघुनन्दन । जानहिं भगत भगत उर चंदन ।।

रामचरितमानस २।१२७।१-२

भगवन्नाम का जप कर ज्ञानी भक्त ब्रह्म सुख का अनुभव करते हैं—

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी । बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी ।।
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा । अकथ अनामय नाम न रूपा ।।

रामचरितमानस १।२२।१-२

डॉ० उदयभानु सिंह का मत है कि लक्ष्मण और हनुमान शुद्ध पुष्ट भक्त; दशरथ और जटायु पुष्टि पुष्ट भक्त और कर्म या ज्ञान का अवलम्बन ग्रहण करने वाले वशिष्ठ तथा जनक मर्यादा पुष्ट भक्त हैं । राम के द्वारा मारे जाने वाले मारीच तथा बालि आदि प्रवाह पुष्ट भक्त हैं ।[1]

तुलसी-प्रतिपादित भक्त-गुण

गोस्वामी जी ने भक्तों के लक्षणों का उल्लेख करते हुए कहा है कि वे षड् विकारों—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—से रहित, अनीह, सत्यनिष्ठ तथा दूसरों को मान देने वाले होते हैं । भगवान् के चरणों में उनकी अतिशय प्रीति

1. भक्ति-दर्शन-मीमांसा, पृष्ठ १४१

होती है।[1] वे अपने गुणों को सुनने में संकोच करते हैं और दूसरों के गुण बड़ी प्रसन्नता से सुनते हैं। उनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया और मुदिता का भाव होता है। वे सदैव परोपकार में निरत रहते हैं। उनके हृदय में दम्भ, अभिमान या मद का भाव कभी नहीं उत्पन्न होता। उनके सम्पूर्ण गुणों का उल्लेख शारदा और वेद भी नहीं कर सकते।[2] कवि ने लिखा है कि राम के भक्त राम से बड़े हैं। यदि श्रीराम समुद्र हैं, तो उनके भक्त मेघ के समान हैं। यदि श्रीराम चन्दन के वृक्ष हैं, तो उनके भक्त पवन के समान हैं, जो भगवान् के यश का विस्तार करते हैं।[3]

राम के भक्त सदैव भगवान् राम की ही कथा कहते और सुनते रहते हैं। उनके नेत्र रूपी चातक श्रीराम रूपी जलद के दर्शनार्थ आकांक्षायुक्त बने रहते हैं। उनकी नासिका प्रभु-प्रसाद के लिए व्याकुल बनी रहती है। वे प्रभु को निवेदन करने के पश्चात् ही प्रसाद ग्रहण करते हैं। वे ब्राह्मणों, देवों और गुरु के समक्ष अपना मस्तक झुकाते हैं।[4] वे सदैव श्रीराम की पूजा करते हैं। वे तीर्थयात्रा करते हैं और

---

१. षट् विकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुख धामा।।
अमित बोध अनीह मित भोगी। सत्यसार कवि कोविद जोगी।।
सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना।।
गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय, तिन्ह कहुँ देह न गेह।। रामचरितमानस ३।४५

२. निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं।।
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीती।।
जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिन्द बिप्र पद प्रेमा।।
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया।।
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना।।
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ।।
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला।।
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते।।
रामचरितमानस ३।४६।१-४

३. राम सिन्धु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा।।
रामचरितमानस ७।१२०।६

४. सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता।।
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना।।
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे।।

(शेष अगले पृष्ठ पर देखें)

अर्थार्थी भक्त—भगवान् के नाम का जप करने से साधकों की सभी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं और वे सिद्धियों के स्वामी बन जाते हैं —

साधक नाम जपहिं लय लाये । होहिं सिद्ध अनिमादिक पाये ।।

रामचरितमानस १।२२।४

जिज्ञासु भक्त—रामचरितमानस के गरुड़ और लक्ष्मण जिज्ञासु भक्त के उत्तम उदाहरण हैं । गरुड़ कामभुशुण्डि से पूछते हैं —

एक बात प्रभु पूछउँ तोही । कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही ।

कहहिं संत मुनि बेद पुराना । नहिं कछु दुर्लभ ग्यान समाना ।।

× × ×

ग्यानहि भगतिहि अंतर केता । सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता ।।

रामचरितमानस ७।११५।५-६

ज्ञानी भक्त—रामचरितमानस के वाल्मीकि ज्ञानी भक्त हैं । वे श्रीराम से कहते हैं —

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे । बिधि हरि संभु नचावनि हारे ।।

तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा । और तुम्हहि को जाननिहारा ।।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई । जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ।।

तुम्हरिहि कृपाँ, तुम्हहि रघुनन्दन । जानहिं भगत भगत उर चंदन ।।

रामचरितमानस २।१२७।१-२

भगवन्नाम का जप कर ज्ञानी भक्त ब्रह्म सुख का अनुभव करते हैं—

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी । बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी ।।

ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा । अकथ अनामय नाम न रूपा ।।

रामचरितमानस १।२२।१-२

डॉ० उदयभानु सिंह का मत है कि लक्ष्मण और हनुमान शुद्ध पुष्ट भक्त; दसरथ और जटायु पुष्टि पुष्ट भक्त और कर्म या ज्ञान का अवलम्बन ग्रहण करने वाले वशिष्ठ तथा जनक मर्यादा पुष्ट भक्त हैं । राम के द्वारा मारे जाने वाले मारीच तथा बालि आदि प्रवाह पुष्ट भक्त हैं ।[1]

तुलसी-प्रतिपादित भक्त-गुण

गोस्वामी जी ने भक्तों के लक्षणों का उल्लेख करते हुए कहा है कि वे षड् विकारों—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—से रहित, अनीह, सत्यनिष्ठ तथा दूसरों को मान देने वाले होते हैं । भगवान् के चरणों में उनकी अतिशय प्रीति

१. तुलसी-दर्शन-मीमांसा, पृष्ठ १४१

होता है।[१] वे अपने गुणों को सुनने में सकोच करते हैं और दूसरों के गुण बड़ी प्रसन्नता से सुनते हैं। उनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया और मुदिता का भाव होता है। वे सदैव परोपकार में निरत रहते हैं। उनके हृदय में दम्भ, अभिमान या मद का भाव कभी नहीं उत्पन्न होता। उनके सम्पूर्ण गुणों का उल्लेख शारदा और वेद भी नहीं कर सकते।[२] कवि ने लिखा है कि राम के भक्त राम से बड़े हैं। यदि श्रीराम समुद्र हैं, तो उनके भक्त मेघ के समान हैं। यदि श्रीराम चन्दन के वृक्ष हैं, तो उनके भक्त पवन के समान हैं, जो भगवान् के यश का विस्तार करते हैं।[३]

राम के भक्त सदैव भगवान् राम की ही कथा कहते और सुनते रहते हैं। उनके नेत्र रूपी चातक श्रीराम रूपी जलद के दर्शनार्थ आकांक्षायुक्त बने रहते हैं। उनकी नासिका प्रभु-प्रसाद के लिए व्याकुल बनी रहती है। वे प्रभु को निवेदन करने के पश्चात् ही प्रसाद ग्रहण करते हैं। वे ब्राह्मणों, देवों और गुरु के समक्ष अपना मस्तक झुकाते हैं।[४] वे सदैव श्रीराम की पूजा करते हैं। वे तीर्थयात्रा करते हैं और

१. षट् बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुख धामा।।
अमित बोध अनीह मित भोगी। सत्यसार कवि कोबिद जोगी।।
सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना।।
गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय, तिन्ह कहुँ देह न गेह।। रामचरितमानस ३।४५

२. निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं।।
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीती।।
जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिन्द बिप्र पद प्रेमा।।
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया।।
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना।।
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ।।
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला।।
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते।।
रामचरितमानस ३।४६।१-४

३. राम सिन्धु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा।।
रामचरितमानस ७।१२०।६

४. सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता।।
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना।।
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे।।

(शेष अगले पृष्ठ पर देखें)

मंत्रराज का नित्य जप करते हैं। भगवान् श्रीराम के भक्त अपने सम्पूर्ण कर्मों के फल के रूप में अपने इष्टदेव के चरणों में अनुराग की कामना करते हैं। वे सम्पूर्ण प्राणियों के साथ निश्छल व्यवहार करते हैं। वे अहर्निश श्रीराम के शरणागत बने रहते हैं। भगवान् श्रीराम उन्हें प्राणों से अधिक प्रिय लगते हैं। उनके सभी सम्बन्ध भगवान् राम पर आधारित होते हैं। भक्त श्रीराम को ही अपना पिता, माता, गुरु, हितैषी और स्वामी मानते हैं।[1] उनके लिए स्वर्ग, नर्क तथा मोक्ष एक समान

(पूर्व पृष्ठ का अवशिष्टांश)

लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी॥
तिन्ह कें हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥
जसु तुम्हार मानस बिमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ, राम बसहु हियँ तासु॥
प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहहि नित नासा॥
तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी॥

रामचरितमानस २।१२८।२-२।१२९।१-२

---

१. कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा॥
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा॥
तरपन होम करहिं बिधि नाना। विप्र जेवाइँ देहिं बहु दाना॥
तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी॥
सबु कर मागहिं एक फलु, राम चरन रति होउ।
तिन्ह के मन मंदिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोउ॥
काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह के कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया॥
सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय वचन विचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
जननी सम जानहिं पर नारी। धनु पराव विष तें विष भारी॥
जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषा॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रान पिआरे। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे॥

(शेष अगले पृष्ठ पर देखें)

हो जाते हैं। उनके मन में न तो स्वर्ग के लिए आसक्ति होती है और न नर्क के लिए विरक्ति। वे मोक्ष की भी कामना नहीं करते। वे सर्वत्र अपने इष्टदेव भगवान् श्रीराम के ही दर्शन करते हैं। वे मन, वचन और कर्म से भगवान् के दास होते है। वे अपने स्वामी श्रीराम से निष्काम भाव से प्रेम करते हैं।[1] इस प्रसंग में हम देखते हैं कि महर्षि वाल्मीकि ने चौदह भुवनों के नायक भगवान् राम के चतुर्दश वर्षीय वनवास की अवधि में निवास के लिए चौदह आवास्य स्थलों का उल्लेख किया है। श्री रामदास गौड़ के मत से यहां भक्ति के निम्नांकित चौदह साधनों का उल्लेख किया गया है[2] :—

१ श्रवणम् २ रूपासक्ति ३ कीर्तनम् ४ पूजासक्ति ५ नामासक्ति
६ ज्ञानवृत्ति ७ भगवदवलम्बवृत्ति ८ सन्तवृत्ति ९ सर्वस्वभाव
१० तितिक्षावृत्ति ११ कार्पण्यवृत्ति १२ वैराग्यवृत्ति १३ अनन्यवृत्ति
१४ शुद्ध प्रेमाभक्ति।

डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र का मत है कि यहाँ चौदह प्रकार के (निम्नांकित) भक्तों की चर्चा की गयी है[3]—

१ श्रवणानन्दी २ दर्शनानन्दी ३ भजनानन्दी ४ सेवानन्दी
५ गुरुभक्ति पूर्वक जपासक्त जीव ६ निर्विकार ७ अनन्य शरणागतिवान्

(पूर्व पृष्ठ का अवशिष्टांश)

स्वामि सखा पितु मातु गुर, जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मन्दिर तिन्ह कें बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात॥
अवगुन तजि सब के गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका॥
गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥

रामचरितमानस २।१२६।२-२।१३१।२

---

१. जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई॥
सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि कें उर डेरा॥
जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥

रामचरितमानस २।१३१।३-४

२. मानस पीयूष—अयोध्याकाण्ड-पृष्ठ ५२३-५२४
३. तुलसी दर्शन—डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र—पृष्ठ २६३

सन्त ८ कामिनी कांचन में अनासक्त सन्त ९ भगवान् को ही सब कुछ समझने वाले १० परहित व्रती ११ विनम्र विश्वासी सेवक १२ ऐश्वर्य त्यागी भक्त १३ मुक्ति के लिए भी अलोलुप सेवक १४ निरीह सहज स्नेही ।

डॉ० रामनारायण पाण्डेय के मत से राम के निवास-स्थानों के बतलाने के व्याज से यहाँ तुलसी ने भक्ति के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डाला है।[1] डॉ० मुन्शीराम शर्मा का मत है कि यहाँ भक्तों के लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है।[2] मेरे मत से इस प्रसंग में कवि ने सभी इन्द्रियों से भगवान् का ही श्रवण, मनन, चिन्तन और दर्शन करने वाले अनन्य निष्ठ भक्तों की मानसिक और शारीरिक स्थिति का वर्णन किया है। इसलिए इस प्रसङ्ग को चौदह प्रकार के भक्तो की साधना-पद्धति का रूप समझना चाहिए।

मानस के उत्तरकांड में भक्तों के गुणों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि वे दूसरों के दुःख से दुःखी और सुख से सुखी होते हैं। वे किसी को अपना शत्रु नहीं मानते। वे मन, वचन और कर्म से भगवान् के भक्त होते हैं। वे दूसरों को आदर देते हैं, किन्तु स्वयं मान नहीं चाहते। उनके हृदय में किसी भी व्यक्ति के प्रति द्वेष नहीं होता। वे कभी किसी को कटु वचन नहीं कहते। वे निन्दा और स्तुति में सम रहते हैं। ऐसे पावन आचरण वाले भक्त भगवान् को अतिशय प्रिय होते हैं।[3]

गोस्वामी जी ने विनय पत्रिका के निम्नांकित पद में प्रतिपादित भक्त के गुणों को धारण करने की कामना व्यक्त की है। इस पद में एक ओर जहाँ गोस्वामी जी

---

१. भक्ति काव्य में रहस्यवाद—डॉ० रामनारायण पाण्डेय–पृष्ठ २७१

२. तुलसी का मानस, पृष्ठ ६८

३. बिगत अकारट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ॥
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी ॥
कोमल चित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥
बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मयत्री। द्विजपद प्रीति धर्म जनयत्री ॥
ए सब लच्छन बसहि जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर ॥
सम दम नियम नीति नहि डोलहि। परुष बचन कबहूँ नहि बोलहि ॥
निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय गुनमंदिर सुख पुंज ॥
रामचरितमानस ७।३८।१ से ७।३८ तक

की दीनता व्यक्त हुई है, वहीं दूसरी ओर भक्त के सहज गुणों पर प्रकाश भी डाला गया है। भक्त यथा लाभ पर संतोष करता है। उसके प्रभु ने जो कुछ दे दिया, उसी को प्रसाद मानकर वह ग्रहण कर लेता है, वह किसी से कोई कामना नहीं करता है।[१] भक्त के हृदय में सदैव परोपकार की भावना बनी रहती है। वह मन, वचन और कर्म से यम-नियमों का पालन करता है। वह सहिष्णु होता है, अतः दुष्टों के अत्यन्त कटु वचनों को भी सुनकर उद्विग्न नहीं होता है। वह सबका सम्मान करता है, किन्तु स्वयं मान की इच्छा नहीं करता है।[२] वह दूसरों के गुणों की प्रशंसा करता है, परन्तु उनके अवगुणों को नहीं कहता। वह सुख-दुःख में सम हो जाता है।[३] इस प्रकार की चित्तवृत्ति हो जाने पर भक्त को अविचल-भक्ति प्राप्त हो जाती है।[४]

गोस्वामी जी ने 'वैराग्य संदीपनी' में भक्तों के गुणों का उल्लेख करते हुए कहा है कि वे शान्त स्वभाव वाले होते हैं। वे सदैव रामभजन करते रहते हैं।[५] वे न तो किसी को शत्रु मानते हैं और न किसी को मित्र; वे समदर्शी होते हैं।[६] भगवान् के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा होती है। उनका मन भगवान् के अतिरिक्त और कहीं नहीं लगता।[७] भगवान् श्रीराम स्वाती नक्षत्र के मेघ के तुल्य हैं और भक्त चातक

---

१. मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तो कहहु कहा बिस्वासा ॥

रामचरितमानस ७।४६।२

२. सबहि मानप्रद आपु अमानी। रामचरितमानस ७।३८।२

३. सुख दुःखे समे कृत्वा। गीता २।३८

४. कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ?

श्री रघुनाथ कृपालु-कृपा तें, संत सुभाव गहौंगो ॥
जथा लाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरंतर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥
परुष बचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, परगुन नहिं दोष कहौंगो ॥
परिहरि देह जनित चिंता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरिभगति लहौंगो ॥ विनयपत्रिका १७२

५. अति सीतल अति ही सुखदाई। सम दम राम भजन अधिकाई ॥

वैराग्य संदीपनी ८।१

६. सत्रु न काहू करि गनै, मित्र गनै नहिं काहि। वैराग्य संदीपनी १३

७. अति अनन्यगति इन्द्री जीता। जाको हरि बिनु कतहुँ न चीता ॥

वैराग्य संदीपनी १३।१

की भांति ।[1] विनय तथा सुशीलता को धारण किये रहना, सबकी कठोर बातों को सहना और मुख से श्रीराम का नाम लेना—भक्तों के ये ही लक्षण हैं ।[2] वे मन, वाणी और शरीर से किसी को दुःख नहीं देते ।[3] जिस प्रकार रात्रि की शोभा चन्द्रमा से और दिन की शोभा सूर्य से होती है, उसी प्रकार भक्त की शोभा भक्ति से होती है ।[4]

---

१. एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास ।
   राम-रूप स्वाती जलद, चातक तुलसीदास ।। वैराग्य संदीपनी १५
२. सील गहनि सबकी सहनि, कहनि हीय मुख राम ।
   तुलसी रहिए एहि रहनि, संत जनन को काम ।। वैराग्य संदीपनी १७
३. तन करि मन करि बचन करि, काहू दूखत नाहिं ।
   तुलसी ऐसे संतजन, राम रूप जगमाहिं ।। वैराग्य संदीपनी २३
४. रैनि को भूषन इन्दु है, दिवस को भूषन भानु ।
   दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ग्यानु ।। वैराग्य संदीपनी ४३